

चारित्र्य सुवास

लेखक

पूज्यश्री आत्मानन्दजी

प्रकाशक

श्रीमद् राजचन्द्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र

कोबा- 382007 (जि. गांधीनगर) गुजरात



चारित्र्य-सुवास

(प्रेरक-प्रसंग)

मूल लेखक : पूज्य संत श्री आत्मानंदजी
हिन्दी अनुवादक : 'बाबुलाल सिद्धसेन जैन'



प्रकाशक :

श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र,
(श्री सत्श्रुत-सेवा-साधना केन्द्र संचालित)
कोबा - 382 007 (जि. गांधीनगर) गुजरात

श्रीमद् राजचंद्र आध्यात्मिक साधना केन्द्र

जयंतभाई एम. शाह, प्रमुख
कोबा - 382 007 (जि. गांधीनगर)
फोन : (079) 2327 6219/483
फेक्स : (079) 2327 6142
E-mail : srask@rediffmail.com

प्रथमावृत्ति : 1000 1995
द्वितीयावृत्ति : 1000 2005

मूल्य : १८ रूपये

मुद्रक :
माणिभद्र प्रिन्टर्स
12, शायोना एस्टेट,
शाहीबाग, अमहदाबाद - 380 004
फोन : (079) 2562 6996

समर्पण

जिन्हें जीवनविकासकी अभिलाषा है, जो अपने जीवनमें ध्येयनिष्ठ हैं, जो विविधलक्षी सद्गुणसंचयके कार्यक्रममें उत्साहपूर्वक कूद पड़े हैं, जिन्होंने सन्मार्गकी उपासनासे ही सत्य सुखकी प्राप्तिकी श्रद्धाका दृढ़ किया है, और ऐसा करनेसे जो सच्चे अर्थमें 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्'के उपासक हुए हैं ऐसे सभी सज्जनोंको यह कृति सादर समर्पित करते हुए हमें आनन्दका अनुभव होता है।

— प्रयोजक

हिन्दीकी प्रथम आवृत्ति

हम आपको बताना चाहेंगे कि सभीके लिए अत्यन्त प्रेरणाप्रद इस 'चारित्र्य-सुवास'की गुजराती भाषामें नौ आवृत्तियाँ निकल चुकी हैं। चारित्रके विकासमें ऐसे लघु प्रेरक प्रसंग बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, विचारक, साधक सभीके लिए विशेष उपकार-कारक हैं, इसी विचारसे पुस्तककी यह सर्वोपयोगी हिन्दी आवृत्ति संस्थाकी ओरसे प्रकट की जा रही है।

कथा-वार्ता-लेखकोंका अनुभव पात्रोंके साथ जागतिक सभीक्षेत्रों - गली-कूचों, गाँव-नगरों, नदी-पर्वतों, कुटी-महलों, निर्धन-धनवानों, सज्जन-दुर्जनों आदि - के बीचसे निकलकर सहज प्रवाहित होता रहा है। हम विना किसी शुल्कके इस माध्यम द्वारा पता नहीं कहाँ-कहाँ, कैसी-कैसी परिस्थितियोंमें घूम-फिर आते हैं, परन्तु थकान विलकुल नहीं लगती अपितु विविध प्रेरणाओंके साथ आनन्द और उत्साहका अनुभव होता है। लगता है, प्राप्त बोध ही संवेदनसे चिपककर रह जाता है।

पुस्तक सम्बन्धी सभी पक्षोंको पूज्य श्री आत्मानन्दजीने अपने आमुखमें स्पष्ट कर दिया है अतः विशेष कथनके लिए कुछ बाकी नहीं रह जाता।

संस्थाकी ओरसे ऐसा ही उपयोगी साहित्य प्रकट होता है जो जीवनोत्थानमें सदा काम आये। शेष आधार तो केवल हमारी अपनी रुचिका है। आशा है, पाठकगण इसका भरपूर लाभ उठायेंगे।

— प्रकाशक

दूसरी आवृत्ति

चारित्र-सुवासका यह दूसरा संस्करण प्रकाशित करते हुए हम हर्षका अनुभव करते है ।

इतिहास-प्रसिद्ध इन प्रसंगोसे हमारी नई पिढीया वाचकवर्ग प्रेरणा प्राप्त करेगा और निजी जीवनके साथ साथ सामूहिक और राष्ट्रीय जीवनको बहेतर बनाएगा ऐसी भावनाके साथ लीजिये आपकी सेवामें प्रस्तुत है यह नवीन संस्करण ।

विनीत

साहित्य प्रकाशन समिति

आमुख

मानवव्यक्तित्वका सर्वतोमुखी विकास होनेमें जो अनेक गुण सहायक हैं उन गुणोंका जीवनमें आचरण कैसे करना ? यह प्रश्न प्रत्येक जीवनविकास-यात्रीके समक्ष एक या दूसरे रूपमें किसी भी समय अवश्य उपस्थित होता है। इस प्रश्नको हल करनेके अनेक उपाय हैं। उनमें एक श्रेष्ठ उपाय यह है कि पूर्वमें जिन महापुरुषोंने वैसे गुणोंका आचरण किया है उनके उन गुणोंका दिग्दर्शन करानेवाले जीवन-प्रसंगोंका अध्ययन करके उनसे प्रेरणा लेना।

अनेक गुणोंके प्रगट होनेमें कारणभूत ऐसे आध्यात्मिक जीवन जीनेकी उत्तम परम्परा इस देशमें प्राचीन कालसे चली आ रही है और इसीलिए इस देशकी संस्कृतिमें आध्यात्मिकताकी मुख्यता विद्यमान है। राजकीय स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद इस मूल संस्कृतिका विशेष विकास होगा ऐसी अपनी संस्कृतिके प्रवर्तकों और उपासकोंकी भावना सफल नहीं हुई है। यह स्वाभाविकरूपसे खेदका कारण है, परन्तु खेदमात्र करनेकी अपेक्षा उस स्थितिका योग्य प्रतिकारक वास्तविक उपाय प्रस्तुत किया जाय तो अच्छा, ऐसा प्रतीत होनेसे संस्कारपोषक साहित्यका सर्जन और वितरण ही उसका एक उपाय है ऐसा अनेक मनीषियोंको लगा।

उपरोक्त विचारसरणीके साथ इस पुस्तकके प्रयोजक भी सम्मत हैं और इसका प्रकाशन भी इसी दिशामें एक नम्र प्रयास है। यदि अपनी जनताका और विशेषरूपसे युवावर्गका ध्यान, अपने देशमें हुए अनेक महापुरुषोंके उदात्त जीवन-प्रसंगोंकी ओर खींचा जाय तो निश्चय ही उसका अच्छा परिणाम आयेगा इसी भावनाके साथ इस

पुस्तकमें वैसे अनेक उत्तम और प्रेरक जीवन-प्रसंगोको गूँथ कर कथाशैलीके रूपमें प्रस्तुत किया है।

वर्तमान युग, विज्ञानयुग है। जो बुद्धिगम्य, इतिहासप्रसिद्ध और वास्तविक है, वही जो समाजके सामने रखा जाय तो समाजकी ओरसे, विशेषकर युवावर्गकी ओरसे शीघ्र स्वीकार्य होता है। इस बातको लक्षमें रखकर पुस्तकमें नियोजित लगभग सभी कथाएँ इतिहासप्रसिद्ध न्यायसे लिखी गयी हैं और जहाँ अमुक स्थान, अमुक तिथि या अमुक व्यक्तिका नाम जाननेमें नहीं आया वहाँ भी पूर्वके किसी प्रमाणसिद्ध साहित्यका आधार लेकर प्रसंगका यथावत् प्ररूपण करनेका प्रयत्न किया गया है। संक्षेपमें, ये न तो कोई पौराणिक कथाएँ हैं और न कोई वार्तासंग्रह ही, परन्तु जीवनके विविध क्षेत्रोंमें विशिष्ट महत्ताको प्राप्त व्यक्तियोंकी जीती-जागती घटनाओंका आलेखन-मात्र है।

इसप्रकार एक ओर जहाँ सत्य, अहिंसा, विश्वप्रेम, सहनशीलता, क्षमा, संयम और ईश्वरभक्ति जैसे सात्त्विक गुणोंका प्रतिपादन हुआ है तो दूसरी ओर शौर्य, प्रामाणिकता, कलारसिकता, मातृप्रेम, युद्धकौशल्य, वाक्पटुता आदि सामान्य मानवीय गुणोंका वर्णन भी है। याचकसे लेकर महाराजातककी, व्यापारीसे लेकर दीवानतककी, बालकसे लेकर वृद्ध-जनतककी, चोरसे लेकर सन्ततककी और ईस्वीसन्-पूर्वसे लेकर अणुयुगतककी विविधताको इस पुस्तकमें समा लिया गया है, जिससे समाजके सभी वर्गवालोंको इसमेंसे रसप्रद पठन-सामग्री मिल जानेकी सम्भावना है।

इस भाँति वस्तुविषयकी विविधता होनेपर भी इस कृतिका

प्रयोजन तो एक ही है कि हम इन प्रसंगोको केवल पढ़कर ही संतोष न मानें अपितु अपने पूर्वजोंके गौरवपूर्ण उत्तराधिकारकी ओर अपना लक्ष जाय और जैसा महान पुरुषार्थ करके उन्होंने अपना जीवन उदात्त एवं दीपस्तम्भके समान बनाया वैसे ही हम भी उन उत्तम गुणोंका जीवनमें प्रयत्नपूर्वक आचरण करें और जीवनको उन्नत बनायें।

आत्मीयता, सहयोगकी भावना, सतत परिश्रम, गहरी सूझ, भाषासौष्टव, विशाल वाचन-लेखनका अनुभव आदि अनेक गुणोंसे विभूषित हमारे दोनों सह-सम्पादक - आत्मारथी शुभ गुणसम्पन्न धर्मवत्सल भाई श्री जयंतीभाई और सरलस्वभावी सहृदयी, साहित्यप्रेमी प्रो. अनिल सोनेगीने इस पुस्तकको सुन्दर रसमय, बोधक और सत्त्वशील बनानेमें जो योग प्रदान किया है वह सचमुच अमूल्य है। इसीके फलस्वरूप यह पुस्तक अपने वर्तमान रूपमें आपके समक्ष समयसे रखी जा सकी है ऐसा बतानेमें मुझे सात्त्विक आनन्दका अनुभव होता है।

अन्तमें, इसके पठनसे राष्ट्र, समाज और व्यक्तिको सामान्य सुख-दशा उत्पन्न हो और साथ ही सत्य ज्ञान एवं सत्य आनन्दके मार्गपर चलनेके लिए सच्चा अध्यात्मदृष्टिकोण अपनानेकी तत्परता और पात्रता प्राप्त हो ऐसी भावनापूर्वक विराम लेता हूँ।

- आत्मानन्द

“जो मनुष्य सत्पुरुषके चरित्र-रहस्यको पाता है, वह पुरुष परमात्मा बनता है।”

- श्रीमद् राजचन्द्र

अनुक्रम

क्रम	विषय	पृष्ठ
१.	अहिंसाका पुजारी	१
२.	प्रामाणिकताका प्रताप	२
३.	परमपदप्राप्तिका रसायन	३
४.	खुदाका फरिश्ता	४
५.	न्यायपूर्ण आयमें संतोष	६
६.	दरिद्रनारायणके प्रति प्रेम	७
७.	'पुत्रके लक्षण पालनेमें'	८
८.	सच्चा त्यागी और दानवीर	९
९.	अपशब्द कहाँ जायें ?	११
१०.	सच्चे भक्तका जीवन	१२
११.	आदर्श-वर्तनका प्रभाव	१३
१२.	विद्याका अभिमान	१५
१३.	कलाकारकी उदारता	१६
१४.	दानाध्यक्षकी निष्पक्षता	१७
१५.	'धरोहर जल्दी वापस दे दे'	१८
१६.	तैरती उड़ती चटाइयाँ	१९
१७.	मित्रके लिए स्वार्थत्याग	२०
१८.	निरभिमान सम्राट	२१
१९.	परमात्माके ध्यानमें	२२
२०.	सच्ची शोभा	२३
२१.	रसास्वादका जय	२४
२२.	भूलकी स्वीकृति	२६
२३.	भक्तकी नम्रता	२६
२४.	राजाकी गुणग्राहकता	२७
२५.	व्यर्थकी बातोंका त्याग	२९

२६. सत्याग्रहकी विजय	३०
२७. अनुकरण	३१
२८. कविका सच्चा मूल्यांकन	३२
२९. 'मात्र इतनी बातसे पतन'	३४
३०. सच्ची लगनसे कार्यसिद्धि	३५
३१. दृष्टिभेद	३६
३२. सन्त-सेवा	३८
३३. अनपढ़के उन्नत संस्कार	३९
३४. 'बुद्धिमानको इशारा काफी'	४०
३५. महापुरुषकी उदारता	४२
३६. प्रभुप्राप्तिका उपाय	४३
३७. नम्रताका आदर्श	४४
३८. कृतज्ञता	४५
३९. दयाके अवतार	४६
४०. 'गड़ढा खोदे सो पड़े'	४८
४१. वरकन्या सावधान	४९
४२. क्षमाका प्रभाव	५०
४३. संयमसे सिद्धि	५१
४४. पात्रानुसार धर्मका दान	५२
४५. प्रथम स्थानका अधिकारी	५३
४६. करुणासागर सन्त	५४
४७. मंत्रीका स्पष्टवक्तापन	५५
४८. 'सुना पर गुना नहीं'	५६
४९. क्षमाकी सच्ची साधना	५७
५०. अभूतपूर्व स्वामीभक्ति	५८
५१. श्रमका आदर	५९
५२. हम अच्छे बनें	६०

५३.	व्यापारीकी प्रामाणिकता	६१
५४.	शूरवीरताका सन्मान	६२
५५.	पात्रभेद	६३
५६.	मंत्रीकी दानशीलता	६४
५७.	शीलकी रक्षा	६५
५८.	आदर्शदर्शी राजा	६७
५९.	जीवरक्षाका दृढ़ संकल्प	६८
६०.	अद्भुत गुरुदक्षिणा	६९
६१.	साधनाका मार्ग	७०
६२.	कीर्तित्याग	७१
६३.	स्वादका त्याग	७२
६४.	सत्यनिष्ठा	७३
६५.	'प्रभु ! सब तेरा ही है'	७५
६६.	जीभकी पवित्रता	७६
६७.	महान वरदान	७६
६८.	प्रेरणाकी परम्परा	७७
६९.	सत्यका आचरण	७९
७०.	सात्त्विकताका फल	८०
७१.	संसारसुख और पुण्य	८१
७२.	महाराजाकी उदारता	८२
७३.	उत्तम मातृभक्ति	८४
७४.	सन्त-वचनका प्रभाव	८५
७५.	नौकरके साथ उदारताका व्यवहार	८६
७६.	सोनेके सिक्कोंकी अस्वीकृति	८७
७७.	अहिंसक सिंह !	८८
७८.	वचनका पालन	८९
७९.	चारित्र्य-सुवास	९०

संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) और हरियाणाकी सीमाके पास, दिल्लीसे लगभग १२० कि.मी. उत्तरकी ओर सहारनपुर नामका नगर है। वहाँके एक प्रसिद्ध जमींदार लाला जम्बूप्रसादजीके जीवनकी यह घटना है।

वर्तमान शताब्दीके प्रथम दशकका यह समय, तब अंग्रेज अधिकारीयोंकी खूब धाक। वहाँके अंग्रेज कलेक्टरने लालाजीसे शिकार करनेके लिए उनका हाथी माँगा। लालाजीने कहा : 'साहब, शिकारके लिए मैं हाथी दूँ तो मेरा अहिंसाधर्म लज्जित हो, ऐसे भारी हिंसात्मक कार्यके लिए मेरा हाथी आपको नहीं मिल सकेगा।'

उस समयमें बड़े अंग्रेज अधिकारीका अपमान अर्थात् सर्वनाशको निमंत्रण। इस घटनाके बाद कुछ महीनों तक उस कलेक्टरने अनेक प्रकारकी धमकियों द्वारा लालाजीको भय दिखाया। अन्तमें जब जाना कि लालाजी अपने निश्चयसे डिगनेवाले नहीं हैं तब कलेक्टर स्वयं ही लालाजीके पास गये और कहा : 'कहिए सेठजी, मेरी माँगके सम्बन्धमें क्या विचार किया ? मेरी माँग नहीं स्वीकारेंगे तो उसका क्या परिणाम होगा इसका आपको पता है ?'

लालाजीने कहा : 'साहब, जो मैं दोषी ठहरूँ तो आप मुझे जेलमें डलवायेंगे, कदाचित् यह सब धन-सम्पत्ति जप्त करवायेंगे अथवा अधिकसे अधिक फाँसीकी सजा दिलवायेंगे, बस इतना ही न ? पर मेरा अहिंसाधर्म तो बच जायेगा

न ? मेरे लिए इससे विशेष कुछ नहीं।'

ऐसा निर्भय और अडिग विश्वासपूर्ण उत्तर सुनकर कलेक्टर खूब प्रभावित हुए और लालाजीकी पीठ थपेड़कर उन्हें धन्यवाद दिया।

देखो ! भारतके महावीर, बुद्ध और गांधीके अहिंसाके सिद्धान्तको पालनेवालोंकी वीरता और दृढ़ता ! हम भी इससे प्रेरणा लेकर अहिंसक बनें।

✱

विक्रम संवत् १७४० में गुजरात-सौराष्ट्रमें भयंकर दुष्काल हुआ। जिससे अनेक पशु और मनुष्य भी भूखे मरने लगे। चौमासा प्रारम्भ हो गया था और दिन-पर-दिन बीते जा रहे थे, फिर भी वर्षा नहीं हुई।

उस समयके गुजरात-नरेशने अनेक यज्ञ किये और साधु-सन्तोंसे प्रार्थना भी की, परन्तु वर्षा हुई ही नहीं। प्रजाके किन्हीं व्यक्तियोंने कहा कि अपने राज्यमें अमुक व्यापारी है वह चाहे तो वर्षा हो सकती है।

राजा तुरंत उस व्यापारीके पास गये और बातचीत की। व्यापारीने कहा, "महाराज ! मैं तो आपका एक सामान्य प्रजा-जन हूँ, मुझसे क्या हो सकता है ?" फिर भी राजा नहीं माने, वे तो हठ करके बैठ गये कि तुम्हें इन अनेक मूक पशुओं और भूखे प्रजाजनों पर दया करनी ही पड़ेगी।

जबतक तुम ऐसा नहीं करोगे तबतक तुम्हारे औंटे पर भूखा बैठा रहूँगा ।

आखिर व्यापारीको मानना पड़ा। उसने अपनी तराजू उठायी और आकाशकी ओर देखकर कहा : 'यदि इस तराजूसे मैंने किसीको कभी भी कम-बढ़ती तौलकर न दिया हो, नीतिका ही सेवन किया हो, सत्यका ही आचरण किया हो तो हे देवताओ ! तुम अनुग्रह करना।'

अभी तो व्यापारीने अपनी प्रार्थना पूरी की, इतनेमें तो आकाश धीरे-धीरे बादलोंसे धिरने लगा। ठण्डी हवा वही और वर्षा होने लगी।

सत्य और प्रामाणिकताका ऐसा प्रभाव देखकर राजा और समस्त प्रजाजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और उस व्यापारीकी कीर्ति राज्यसभामें फैल गयी।

परमात्मा भी प्रामाणिकताके आधीन हैं।



आजसे लगभग १८०० वर्ष पूर्व मिस्र देशमें हुए महान सन्त अँन्योनीके जीवनकी यह घटना है। उस समयके प्रथम पंक्तिके महात्माओंमें उनकी गिनती होती थी और उनकी ख्यातिकी सुगन्ध आसपासमें सैंकड़ो मीलौंतक फैली हुई थी।

एक समय भक्तोंके आग्रहको सम्मान देकर वे अँलेक्झान्द्रिया पधारे थे। धर्मका महोत्सव पूर्ण होने पर अपने मूल स्थान,

अर्थात् पिसपिर नामक एकान्त पहाड़ी पर जानेका अपना विचार उन्होंने प्रगट किया।

सन्त दूर चले जायेंगे तो हमें समागमका लाभ नहीं मिलेगा ऐसे विचारसे भक्तजनोंमें निराशा व्याप्त हो गयी। सभीने मिलकर सन्तसे वहीं रुकनेकी प्रार्थना की।

सन्तने कहा : 'बन्धुओ ! तुम्हारा प्रेम मैं अच्छी तरह समझ सकता हूँ, परन्तु हमारी सन्तोंकी दुनिया अलग ही है। जैसे मछलीको पानीसे बाहर निकालो तो वह तड़फड़ाकर फिरसे पानीमें ही जानेकी इच्छा करती है, वैसे हम भी कभी किसी समय विशेष कारणसे लोकप्रसंगमें आये तो भी फिरसे एकान्त पहाड़-जंगलादिकी ओर वापस जानेको हमारा मन छटपटाता है, कारण कि ऐसे एकान्त-नीरव स्थानमें मौन सहित हम अपने प्रभुके साथ लय लगाते हैं और वह परमात्मप्रेम ही हमारे जीवनको अमर बनाने वाला रसायन है।'

— और दूसरे दिन सन्तने स्वस्थान प्रति विहार किया।



विक्रम संवत् १९४५के समयकी यह बात है।

एक बार एक अरबिस्तानीने मुंबईके एक प्रतिष्ठित जौहरीके साथ हीरोंका सौदा किया। सौदा करते समय ऐसा निश्चित हुआ कि अमुक समय पर, निश्चित किये गये भावसे

अरब-व्यापारी मुंबईके जौहरीको हीरे दे। इस सम्बन्धका दस्तावेज भी तैयार हो गया।

समय पकने पर इन हीरोंका मूल्य बहुत अधिक बढ़ गया ! जो, अरब-व्यापारी दस्तावेजमें लिखे मूल्यके अनुसार हीरे दे तो उसे दिवाला निकालनेका समय आवे।

इस ओर वे जौहरी भोजनके लिए बैठनेकी तैयारीमें थे तभी उन्हें सौदे और साथ-साथ हीरोंके खूब बढ़ गये भावोंकी याद आ गयी। भोजन करना एक ओर छोड़ वे तो प्रस्थान कर गये सीधे अरब-व्यापारीके वहाँ ! अपने लेनदारको दुकान पर आया हुआ देखकर व्यापारी बेचारा घबरा गया। स्वाभाविकरूपसे ही उसने मान लिया कि समय हो गया है इसलिए जौहरी सौदेका निबटारा करनेके लिए ही आया होगा।

अरब-व्यापारीने कहा : 'अपने बीच हुए हीरोंके सौदेके सम्बन्धमें मैं बहुत चिन्तित हूँ। मेरा जो होना होगा सो होगा परन्तु आप विश्वास रखिएगा, मैं आपको आजके बाजार-भावसे अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर भी सौदा चुका दूँगा।'

इतनेमें वात्सल्यपूर्ण करुणाभरी आवाज़ आयी, 'वाह भाई वाह ! मैं चिन्ता क्यों न करूँ ? तुम्हें सौदेकी चिन्ता हो तो मुझे क्यों न हो ? चिन्ताका मूल कारण यह छोटा-सा कागज़का टुकड़ा है, इसे ही नष्ट कर दें तो अपनी दोनोंकी चिन्ता मिट जाय।'

ऐसा कहकर जौहरीने सौदेका दस्तावेज फालतू कागज़की तरह फाड़ डाला, जिसमेंसे उन्हें ७०,००० रुपयोंका लाभ होनेवाला था ! तबसे अरब-जगतमें वह व्यापारी कहता कि

हिन्दुस्तानमें मानवके देहमें एक 'खुदाका फ़रिश्ता' रहता है। ये जौहरी और कोई नहीं, परन्तु जगतको अध्यात्मका संदेश देनेवाले और गांधीजीको सत्य और अहिंसाकी प्रेरणा देनेवाले श्रीमद् राजचन्द्र (रायचन्दभाई) थे।

इस एक दृष्टान्तमें देखो ! महापुरुषोंकी उदारता, नीति, संतोष और सूक्ष्म अहिंसाधर्मको निभानेकी लगन !!

✱

५ न्यायपूर्ण आयमें संतोष

श्री रामकृष्ण परमहंसके अनेक प्रसिद्ध शिष्योंमें नाग महाशय नामके एक सज्जन भी थे। उनके पिता सामान्य नौकरी करते और स्वयं होमियोपथीकी प्रेक्टिस करते। उनके अधिकांश रोगी गरीब अथवा विलकुल सामान्य परिस्थिति वाले होते थे इसलिए उनकी आय भी सामान्य मध्यमवर्गीय कुटुम्ब जैसी होती थी।

एक समय एक श्रीमन्त बहनने उनसे इलाज करवाया। रोग बहुत ही कष्टसाध्य था परन्तु उस बहनका रोग उनकी दवासे विलकुल मिट गया। बिल चुकानेका समय आया तब वह बहन महाशयको अधिक पैसे देने लगी।

नाग महाशयने कहा, 'बहन ! सात दिनकी फीसके चौदह रुपये और दवाकी कीमत छह रुपये, इसप्रकार कुल मिलाकर तुम्हें बीस रुपये देने हैं।'

बहनने अधिक पैसे लेनेका बहुत आग्रह किया तब नाग

महाशयने कहा, 'मेरे अधिकारके पैसे तो इतने ही होते हैं, तुम्हें देना ही है तो किसी अन्य प्रसंग पर दानके लिए दे सकती हो कि जिसका उपयोग गरीब रोगियोंके लिए होगा। इस समय तो किसी भी अवस्थामें मैं अधिक नहीं ले पाऊँगा।'

कुटुम्बीजन और पिताजी नाराज हुए फिर भी नाग महाशयने अपना न्यायका आग्रह नहीं छोड़ा।

देखो, बड़े पुरुषोंका संतोष और न्यायपूर्ण जीवन-व्यवहार !!



यूरोपके सन्त-साहित्यके इतिहासमें इटलीके प्रसिद्ध सन्त फ्रांसिसका नाम खूब प्रसिद्ध है, उन्होंने विरक्त जीवन अंगीकार किया उसके पूर्वके समयकी यह घटना है। युवावस्थामें उन्हें अनेक कलाकारों और संगीतज्ञोंका अच्छा परिचय था। खूब धनवान होनेके कारण ऐसे कलाकारों तथा गरीबों और भिक्षुकोंका उनके यहाँ सदा आना-जाना रहता था और वे भी उदार हृदयसे सबको संतुष्ट करते थे।

एक दिन वे अपनी रेशमी कपड़ेकी दुकानमें बैठे थे। बड़ा ग्राहक था, उसके साथ स्पष्टीकरण और लेन-देनमें एक भिखारी थोड़ी देर खड़े रहकर चलता बना। उस पर उनकी दृष्टि पड़ी परन्तु वह ग्राहक उठा तबतक तो भिखारी दूर निकल गया था।

जिस दिशामें वह भिखारी गया था उस दिशाकी ओर वे खूब-वेगसे दौड़े। सबको ऐसा लगा कि कोई भिखारी उनकी दुकानमेंसे माल चुराकर भागा है उसे पकड़नेके लिए वे दौड़ रहे हैं।

आखिर उन्होंने उस भिखारीको ढूँढ निकाला। दौड़नेसे वे बिलकुल पसीनेमें तर हो गये और हाँप चढ़ गयी। उन्होंने भिखारीसे क्षमा माँगते हुए कहा, 'मुझे क्षमा करना भाई, मैं ग्राहकके साथ माथापच्चीमें पड़ा हुआ था इसलिए तुम्हारी ओर ध्यान नहीं दे सका।' उस समय उनकी जेबमें जितने पैसे थे वे सब, और अपना कोट उस भिखारीको दे दिये।

'प्रभु तुम्हारा सर्व प्रकारसे कल्याण करें' ऐसा आशीर्वाद दरिद्रनारायणने दिया।

सन्त फ्रांसिस अपना कर्तव्य निभाकर दुकान पर वापस लौटे तब उन्हें किसी बड़े ग्राहकको निबटानेकी अपेक्षा विशेष आनन्द था।



७

'पुत्रके लक्षण पालनेमें'

'अरे नामु ! तेरी धोतीपर यह खूनका धब्बा कैसे लगा ?'

'माँ, यह तो मैंने कुहाड़ीसे अपने पैरकी चमड़ी छोली थी, इसलिए खून निकला था और उसका धब्बा धोती पर लग गया।'

‘नामु ! तू मूर्ख है। अपने पैरों पर कोई कुल्हाड़ी मारता होगा ? ऐसा करते हुए कभी अधिक लग जाय और पके अथवा सड़न हो जाय तो पैर कटवानेका समय आवे’

नामु : माँ, अपनेको जैसे कुहाड़ी लगनेसे दुःख होता है वैसे वृक्षको भी होता होगा। तूने मुझे नीमकी छाल लानेको कहा था तब मैंने उसकी छाल उखाड़नेके बाद अपने पैर पर भी प्रयोग किया था।

माँ : नामु, मुझे लगता है, तू भविष्यमें कोई बड़ा सन्त महात्मा बनेगा, कारण कि छोटेसे छोटे पौधे, वृक्ष या जीवजन्तुको भी अपने समान ही दुःखका अनुभव होता होगा ऐसी करुणाभरी भावुकता तेरे हृदयमें सहजरूपसे उत्पन्न होती है। छोटे बालकको ऐसा विचार कहाँसे आवे ?

— और, माताका अनुमान सचमुच सत्य निकला। भविष्यमें यह बालक अपने समयका एक महान भक्त-सन्त हुआ, जिन्हें हम आज भक्तशिरोमणि नामदेवके नामसे जानते हैं।

✱

८

सच्चा त्यागी और दानवीर

काशीराज और कोशलराज इन दोनोंकी यह कथा है। दोनों राजाओंके राज्य पास-पासमें आये हुए थे। काशी सुदृढ़ राज्य था, परन्तु कीर्ति कोशलराजकी अधिक थी। कोशलराज दानके लिए प्रसिद्ध थे। उनके यहाँ दान लेनेकी इच्छासे आया हुआ कोई भी व्यक्ति खाली हाथ वापस नहीं जाता था।

काशीराजसे कोशलराजकी कीर्ति सहन नहीं हुई। उसने कोशल-प्रदेशपर चढ़ाई कर दी। कोशलका राजा जैसा दानवीर था वैसा ही संस्कार और त्यागी भी था। उसे कीर्तिकी कोई अभिलाषा नहीं थी। वह प्रजाकी शान्तिका इच्छुक था। उसने तुरंत निर्णय किया कि बिना किसी दोषके प्रजाका संहार हो इसकी अपेक्षा मैं अकेला इसमेंसे खिसक जाऊँ तो प्रजा बच जायेगी। ऐसा विचारकर आधी रातको छिपे वेशमें वह अदृश्य हो गया। दूसरे दिन कोशलने शरणागति स्वीकार ली। शान्ति हो गयी। काशीराजने कोशलका कार्यभार सँभाल लिया। इतना होते हुए भी गीत तो कोशलराजकी कीर्तिके ही गाये जाते थे। ऐसा देखकर काशीराजने कोशलराजके मस्तकके लिए एक लाख रुपयेका पुरस्कार घोषित किया।

कोशलराजका पता नहीं लगा। एक बार एक झोंपड़ीके पास कोई समुद्र-यात्री आया। उसने झोंपड़ीके संन्यासीसे कोशल जानेका मार्ग पूछा। संन्यासीने प्रश्न किया कि उस अभागी नगरीका तुझे क्या काम है? समुद्र-यात्रीने उत्तर दिया कि मेरे जहाज डूब गये हैं। मैं भिखारी हो गया हूँ। एक ही आशा है कि कोशलनरेशके पास जाऊँ। वे दानी हैं। वे ही मेरा सर्व दुःखनिवारण करेंगे।

संन्यासीने कहा कि चल, मैं तुझे कोशलका मार्ग बताऊँ। आगे संन्यासी और पीछे यात्री, दोनों कोशलकी राजसभामें आ पहुँचे। संन्यासीको राजसभामें देखकर, बैठे हुए सभी दरबारियोंके आश्चर्यका पार नहीं रहा।

संन्यासी आगे आये और काशीनरेशसे कहा : 'उतार ले यह मस्तक। जिसकी तुझे इच्छा है वही यह कोशलनरेश

है। मेरे मस्तकके पुरस्कारकी रकम इस यात्रीको दे दे। अन्य कुछ मेरे पास देनेके लिए नहीं है, और इस बेचारेको पैसेकी आवश्यकता है।'

पूरी सभा स्तब्ध रह गयी। नीरव शान्ति प्रसर गयी। काशीनरेशके परिणाम बदले। उनकी आँखोंमेंसे आँसूकी धार बह निकली। उन्होंने कहा, 'कोशलराज, जो होना था सो हो गया परन्तु तुम्हारी कीर्तिपर अब कलश नहीं चढ़ने दूँगा। तुम धन्य हो।' सहसा सिंहासन परसे उतरकर उन्होंने कोशलराजको सम्मानपूर्वक राजगद्दी वापस सौंप दी।

*

९ अपशब्द कहाँ जायें ?

भगवान बुद्धके पास अनेक पुरुषोंने दीक्षा ली थी, उसमें भारद्वाज नामका एक ब्राह्मण भी था।

भारद्वाजके इस कृत्यसे उसका एक सम्बन्धी (कुटुम्बी) बहुत क्रोधित हुआ और बुद्ध भगवानके पास आकर उनको बहुत-सी गालियाँ दीं और अपशब्दोंसे तिरस्कार करने लगा। बुद्धदेव शान्त और मौन रहे, अतः वह गाली देनेवाला अन्तमें थककर चुप होकर बैठ गया।

थोड़ी देर बाद तथागतने उसे पूछा, क्यों भाई ! तेरे यहाँ कोई मेहमान आते हैं कि नहीं ?

'हाँ आते हैं। उसने उत्तर दिया।

तथागतने पूछा, 'तू उनका सत्कार करता है कि नहीं ?

सम्बन्धीने कहा, 'कौन मूर्ख अतिथिका सत्कार न करे ? तथागत पूछते हैं, 'भाई ! तेरी दी हुई वस्तुओंका अतिथि स्वीकार न करे तो वे वस्तुएँ कहाँ जायें ?

सम्बन्धीने कहा, 'मेरी दी हुई वस्तुओंका वे उपयोग न करें तो मुझे ही वापस मिलें - मेरे पास ही रहें।'

तथागत बोले, भाई ! तेरी इन गालियों और अपशब्दोंका मैंने स्वीकार नहीं किया तो तेरी गालियोंका अब क्या होगा ? वे अपशब्द अब कहाँ जायेंगे ?'

वह मनुष्य बहुत शरमा गया और अपने दुष्कृत्यके लिए तथागतसे क्षमा माँगी।

गालियाँ, अपमान, कष्ट आदि 'खा जानेसे' आत्मबल बढ़ता है। इसीलिए सन्तोंने साधकके लिए 'गम' खानेकी आज्ञा की है और स्वयं 'गम खाकर' उपरोक्त प्रकारके अनेक दृष्टान्त साधकोंको प्रेरणा देनेके लिए स्वयंके जीवनमें सिद्ध कर दिखाये हैं।

✱

मध्यकालीन सन्त-भक्तोंमें कुम्भनदासका नाम प्रसिद्ध है। वे वृन्दावनके पास जमुनावतो नामक गाँवमें खेती करके अपना गुजारा करते और निरन्तर प्रभुभक्तिमें लीन रहते।

एक समय सम्राट अकबरके प्रमुख सेनापति महाराजा मानसिंह वहाँ आये। प्रभुके कीर्तनमें अत्यन्त निमग्न देखकर मानसिंहके मनमें कुम्भनदासके प्रति बहुमान उत्पन्न हुआ। दूसरे

दिन मानसिंह कुम्भनदासके घर आये। भक्तके घरमें तो होवे भी क्या ? भक्तराज तो पानीमें देखकर मस्तक पर तिलक लगाते और खेतमेंसे लाये हुए घासका आसन बनाते। यह देखकर राजा मानसिंहने उन्हें अपना सुवर्णमय दर्पण दिया।

भक्तने कहा, 'महाराज, मेरी कुटियामें यह नहीं शोभेगा। कोई चोर-डाकू जानेगा तो उसकी दानत बिगड़ेगी। मुझे तो अपनी कुटियामें ही शान्ति है। मुझे इसकी जरूरत नहीं है।'

अन्तमें मानसिंहने कहा, भक्तराज ! यह जमुनावतो गाँव तुम्हारे नाम लिखवा दूँ, जिससे तुम्हारी अनाज-उत्पत्तिकी चिन्ता मिट जाय। इस बातको भी जब भक्तने अस्वीकार किया तब मानसिंहजीने जाते-जाते स्वर्णमुद्राओंकी एक थैली रख दी, परन्तु उसे वापस देते हुए भक्तराजने कहा, 'इतने वर्ष जैसे चला वैसे अब भी अवश्य चल जायेगा। आप चिन्ता न करें। उसकी आवश्यकतावाले, राज्यमें बहुत लोग हैं आप उनको दें और उनके दुःख-दर्द दूर करें।'

ऐसी परम निःस्पृहतासे राजा मानसिंहके रोम-रोममें उस भक्तराजके प्रति श्रद्धाभाव जागृत हुआ। उन्होंने सन्त कुम्भनदासकी चरणरज मस्तक पर चढ़ाकर अपनेको धन्य माना।

*

रात्रिका तीसरा पहर था। सब कोई निद्राके आधीन थे। एक घरके अन्दर चुपकेसे चोरने प्रवेश किया। घरका

मालिक जागता था परन्तु उसने समता रखी। जो कुछ हो रहा था वह सब देखता रहा। चोरने सब मालसामान एक पोटलेमें बाँधा और उस पोटलेको उठाकर सिरपर रखने लगा, परन्तु भार बहुत अधिक होनेसे पोटला उचका नहीं गया, इससे चोर आकुलित हुआ।

घरका मालिक उठा और चोरसे कहा, भाई ! ला, मैं तुझे पोटला सिर पर रखवाता हूँ । चोर तो घबरा गया परन्तु 'न भागा जाय न छोड़ा जाय' जैसी स्थितिमें देखकर घरमालिकने उसे कहा, भाई ! तुझे इन वस्तुओंकी आवश्यकता है इसीलिए तो तू चोरी करने आया । मुझे इन वस्तुओंके बिना चलेगा, तू ले जा। ऐसा कहकर, चोरके कुछ बोलनेसे पहले ही पोटला उस चोरके सिरपर रखवा दिया।

घर जाकर चोरने सारा सच्चा और वास्तविक वृत्तान्त अपनी मातासे कह सुनाया। सारा वृत्तान्त सुनकर माताने वह पोटला जिस घरसे चुराकर लाया था वहीं वापस सौंप देनेको कहा। चोरने वापस उस घरमें जाकर पोटला रखते हुए कहा, 'मालिक, आजसे मुझे इस दुष्कर्मका आजीवन त्याग है।'

देखो ! सच्चारित्रकी कैसी अपार महिमा है !!

यह प्रसंग प्रसिद्ध अध्यात्म-कविवर बनारसीदासके जीवनका है, जो शहंशाह अकबर और जहांगीरके दरबारमें अपनी विद्वत्ता और कवित्वशक्तिके लिए आदर-सत्कार प्राप्त करनेवाले महापुरुष थे।



एक बौद्ध ब्रह्मचारी थे। युवा वय, तीक्ष्ण बुद्धि, ज्ञानार्जनकी लगन और देश-विदेशमें परिभ्रमणकी शक्ति आदि अनेक कारणोंसे थोड़े वर्षोंमें ही वे शस्त्रविद्या, न्याय, व्याकरण, भाषा, काव्यशास्त्र एवं शिल्प, चित्रकला, गृहनिर्माणकला आदि अनेक लौकिक विद्याओंमें निपुण हो गये।

इन सब विद्याओंको देखकर लोग विस्मय करते और उनकी प्रशंसा करते। जहाँ जाते वहाँ समाजके सभी वर्गोंकी ओरसे उनका सम्मान होता। इसप्रकार अपनी ख्याति बढ़ जानेसे उनमें अभिमान जागृत हुआ और वे स्वयंको सबसे अधिक चतुर और विद्वान मानने लगे।

उनकी प्रशंसाकी बात बुद्धदेव - तथागत तक पहुँची। उनको सन्मार्ग पर लानेके लिए करुणामय दृष्टिसे वे उनके पास वृद्ध ब्राह्मण - याचकका रूप लेकर गये।

‘तू कौन है?’ ब्रह्मचारीने अभिमानपूर्वक पूछा।

‘मैं आत्मविजयका पथिक हूँ।’ तथागतने कहा।

‘इसका क्या तात्पर्य है? स्पष्ट कह’ ब्रह्मचारीने स्पष्टीकरण चाहा।

‘जिसप्रकार खेती, गृहनिर्माण, चित्र, शिल्प आदि कलाएँ हैं, उसी प्रकार अपने मन, वचन, काय और आत्मा पर विजय प्राप्त करनेकी भी कला है। जो उसे सिद्ध करता है वह आत्मविजयी बनता है।’

‘यह किसप्रकार हो सकता है?’ ब्रह्मचारीने पूछा।

जो अपनी प्रशंसा सुनकर मनको शान्त रखता है और गालियोंसे अपमान होने पर भी समताभाव रखता है, ऐसा पुरुष ही आत्मविजयी बनकर निर्वाणको पा लेता है।'

तथागतका ऐसा उत्तर सुनकर ब्रह्मचारी सत्यमार्गको समझे और सम्यक् पथकी ओर मुड़ गये।



इंग्लैन्डकी प्रसिद्ध कलासंस्था 'रॉयल अॅकेडमी' के व्यवस्थापकोंकी सभा हो रही थी। संस्थाके मुख्य हॉलमें एक बड़े चित्रप्रदर्शनका आयोजन किया गया था। देश-विदेशके अनेक कलाकारोंकी सुंदर कृतियाँ उस प्रदर्शनमें रखी जानी थीं। चित्रप्रदर्शनके लिए जितने स्थान थे, सभी भर गये थे।

एक नये चित्रकारका भी एक सुन्दर चित्र आया था, परन्तु स्थानाभावके कारण उसे कहाँ रखना यह प्रश्न व्यवस्थापकोंके समक्ष खड़ा हुआ। चित्र सुन्दर और रखने योग्य है यह तो सभीने स्वीकार किया, परन्तु क्या किया जाय ? जगहका अभाव था।

वहाँ पर प्रसिद्ध चित्रकार श्रीयुत टर्नर उपस्थित थे, क्योंकि वे भी व्यवस्थापकोंमेंसे एक थे। उन्होंने अपना एक चित्र निकाल दिया और उस नये चित्रकारका चित्र उस स्थान पर रख दिया। सबको आश्चर्य हुआ, तब श्रीयुत टर्नर बोले, 'नवोदित कलाकारोंको आगे लानेके लिए हम प्रौढ़

कलाकार यदि आगे नहीं आयेंगे तो उनकी प्रसिद्धि कैसे होगी ? हमें ऐसे नये कलाकारोंको अवश्य प्रोत्साहन देना चाहिए।'

अपने समाजके वयोवृद्ध कलाकार, डॉक्टर, वकील तथा अन्य व्यवसायी लोग इस प्रसंगसे शिक्षा लें तो युवान पीढ़ीको कितना लाभ हो ?

*

अठारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें, पेशवाओंके दरबारमें मुख्य न्यायाधीश और दानाध्यक्षके रूपमें रामशास्त्रीने बहुत वर्षों तक अपनी सेवाएँ प्रदान कीं।* आदर्श और प्रामाणिक राज्यसेवककी दृष्टिसे उनकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी थी।

एक समय किसी धर्मानुष्ठानके प्रसंग पर दान दिया जा रहा था, तब रामशास्त्री और नाना फडनवीस उपस्थित थे। दान लेनेवालोंमें बड़ी संख्या ब्राह्मणोंकी थी। रामशास्त्रीके सगे भाईकी भी उसमें बारी आई तब नाना फडनवीसने कहा, 'शास्त्रीजी, इसे बीस रुपये दो।'

'मेरा भाई कोई विशेष विद्वान नहीं है, इसलिए सभी ब्राह्मणोंकी भाँति इसे भी दो रुपये मिलने चाहिए।' रामशास्त्रीने दृढ़तासे उत्तर दिया। 'मेरा भाई होनेके नाते उसे मैं स्वयं निजी रूपसे अपने पैसोंमेंसे कुछ भी दूँ, परन्तु राज्यके कोषमेंसे देनेका मुझे भाव भी नहीं है और अधिकार भी नहीं है।'

नाना फडनवीस विशेष कुछ कहें उससे पहले ही रामशास्त्रीने अपने भाईको दो रुपये दे दिये और भाई भी वह दक्षिणा लेकर चुपचाप चलता बना। ऐसे महान, निष्पक्ष और न्यायी पुरुषकी कीर्ति भारतके इतिहासमें अमर हो तो इसमें क्या आश्चर्य है ?

*

१५

‘धरोहर जल्दी वापस दे दे’

बिरवरिया नामकी एक उच्च विचारवाली संत बाई थी। उसके पतिका नाम महात्मा रब्बी था। उनके दो बुद्धिशाली पुत्र थे। दुर्भाग्यवश सर्पदंशसे दोनों पुत्रोंकी एक-साथ मृत्यु हो गयी। उस समय महात्मा रब्बी घरपर नहीं थे। बाईको तत्क्षण दुःख हुआ, परन्तु संस्कारी होनेसे तात्त्विक विचार किया कि जो हुआ है उसमें परिवर्तन होनेवाला नहीं है। जन्ममरणका प्रवाह कोई रोक नहीं सकता। समय पूरा होनेपर सभीको चला जाना पड़ता है। परमात्माकी माया ही ऐसी है।

घरपर पतिके नहीं होनेसे लड़कोंके शव पासके बड़े कमरेमें रख छोड़े। जब अपने पति घर आये तब जैसे कुछ हुआ ही नहीं इसप्रकार प्रसन्न मुखसे वह सामने गयी और सम्मानपूर्वक पतिको बैठानेके बाद पूछने लगी, ‘अपने यहाँ किसीकी धरोहर है तो उसे वापस दे दूँ?’ रब्बीने कहा, ‘अभी जल्दी दे दे। इसमें समय बिताना योग्य नहीं है।’

तब बाई, रब्बीको स्वस्थ चित्तसे कमरेमें ले गयी। पुत्रोंके शव परसे चादर हटाकर बोली, 'देख लो, भगवानने अपने यहाँ रखी हुई यह धरोहर!' रब्बी तो यह देखकर स्तब्ध हो गये। बाई बोली, 'खुदाने दिये और खुदाने लिये, इसमें अपनेको क्या?'

अपनी स्त्रीका यह विवेक देखकर रब्बी प्रसन्न हुए।

*

१६

तैरती उड़ती चटाइयाँ

हसन और राबिया दोनों मुस्लिम संत थे।

नमाज़ पढ़नेका समय था। संत हसनको, स्वयंको प्राप्त सिद्धिके बलसे सबको आश्चर्यचकित कर देनेकी इच्छा हो आयी। इसलिए उसने अपनी चटाई पानीके ऊपर बिछायी और राबियासे कहा, 'चलो, हम इस चटाईपर बैठकर नमाज़ पढ़ लें।'

संत राबिया विचक्षण थी। वह समझ गयी कि संतको सिद्धिका अभिमान हुआ है, परन्तु हसनको सीधा उत्तर देनेकी अपेक्षा उनकी भाषामें ही उत्तर देनेका उसने निर्णय किया।

राबियाने अपनी नमाज़ पढ़नेकी चटाई हवामें उड़ा दी और हसनसे कहा, 'चलो, हम इस चटाईपर बैठकर नमाज़ पढ़ें, जिससे अपनेको कोई न देख सके।'

संत हसनको अपनी भूलका ध्यान आ गया। उन्होंने राबियासे कहा कि मुझे माफ़ कर दो। तब राबियाने कहा,

'तुमने जो किया वह एक मछली करे उससे अधिक कुछ नहीं, और मैंने जो किया वह एक मक्खी करे उससे विशेष कुछ नहीं है; परन्तु हम तो मानव हैं। अपना मूल काम तो इन दोनोंसे ऊँचा है।'



१७

मित्रके लिए स्वार्थत्याग

ईस्वी सन् १८४४का वर्ष।

कलकत्ताके संस्कृत कॉलेजमें व्याकरणके प्राध्यापकका स्थान खाली हुआ। कॉलेजके व्यवस्थापकोंने इस पदके लिए उस समयके प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागरकी नियुक्ति करनेका विचार किया। विद्यासागरजीको उस समय पचास रुपये मासिक मिलते थे। नया पद ग्रहण करनेके बाद नब्बे रुपये मासिक मिलनेवाले थे।

इस बातका विद्यासागरजीको पता चला। उनके एक मित्र श्रीयुत तर्कवाचस्पति व्याकरणके विषयमें उनसे अधिक जानकार थे। विद्यासागरजीने कॉलेजके व्यवस्थापकोंसे कह दिया कि वे इस पदको नहीं स्वीकारेंगे, क्योंकि दूसरे एक व्यक्ति इस पदको ग्रहण करनेके लिए अधिक योग्य हैं।

पहले तो व्यवस्थापकोंने बहुत आनाकानी की परन्तु जब विद्यासागरजीने अपना दृढ़ अभिप्राय व्यक्त कर ही दिया तब उन्होंने भी विद्यासागरजीकी बात स्वीकार कर श्रीयुत तर्कवाचस्पतिजीकी नियुक्ति कर दी।

श्री तर्कवाचस्पतिजीको यह शुभ समाचार देनेके लिए विद्यासागरजी स्वयं ही कलकत्तासे कुछ मील दूर उनके निवास-स्थानपर गये। जब सारी वास्तविकता जाननेमें आयी तब तर्कवाचस्पतिजीने कहा, 'विद्यासागरजी, आप मनुष्यके रूपमें अवतरित एक महान देवता ही हैं।'

*

१८

निरभिमानी सम्राट

भारतमें हो गये महान सम्राटोंकी प्रथम पंक्तिमें महाराजा विक्रमादित्यका नाम प्रसिद्ध है।

स्वयंके द्वारा किये गये अनेक परोपकार और लोककल्याणके कार्योंकी सदैव स्मृति रखनेके विचारसे महाराजाने एक विशाल कीर्तिस्तम्भ निर्माण करानेका संकल्प जिस रात्रिको किया था उसी रातकी यह बात है।

अपने नियमके अनुसार राजा वेश बदलकर नगर-निरीक्षण करनेके लिए निकले, ऐसेमें दो बड़े मदोन्मत्त साँड़ लड़ते-लड़ते उनके मार्गमें आये। उनसे बचनेके लिए राजा एक ब्राह्मणकी पुरानी गौशालाके खंभे पर चढ़ गये। वे साँड़ भी परस्पर लड़ते हुए उसी खंभे पर अपने सींग मारने लगे, इतनेमें ब्राह्मण जाग गया।

ब्राह्मण, ज्योतिष-विद्याका जानकार था। रात्रिको आकाशमें मंगल और शुक्रके ग्रहोंको देखकर उसने ब्राह्मणकी जगाया और कहा, 'यह ग्रहयोग राजाके जीवनके लिए भयका संकेत

करता है, इसलिए हम शान्तिहवन करेंगे।

ब्राह्मणी बोली, 'अपने राजाने अनेक बड़े दान किये परन्तु हमारी सातों कन्याओंके विवाहके लिए अबतक कुछ नहीं दिया, तो शान्तिकर्मके द्वारा राजाको संकटमुक्त करनेके लिए आप क्यों इतने अधिक तत्पर हुए जा रहे हैं?' - ब्राह्मणने उस समयके लिए बातको भुला दी।

राजाने यह सर्व वृत्तान्त खंभेपर चढ़े-चढ़े सुन लिया था।

दूसरे दिन प्रातः राजाने उस ब्राह्मणको बुलाया और पर्याप्त धन देकर उसे कन्याविवाहकी चिन्तामेंसे मुक्त किया, एवं स्वयंको अभी बहुत-से लोकोपयोगी कार्य करने बाकी हैं, इसलिए कीर्तिस्तम्भके निर्माणमें प्रजाका धन व्यय करना उचित नहीं है, ऐसा विचारकर उस महाराजाने अपनी कीर्तिके लिए उत्पन्न अभिमानको सदाके लिए त्याग दिया।

✱

एक समय खैयास नामक कोई महाशय अपने शिष्यके साथ वनमें चले जा रहे थे, ऐसेमें नमाज़ पढ़नेका समय हुआ। वे एक वृक्षके नीचे नमाज़ पढ़ने लगे। उस समय एक सिंहने पासमें आकर अचानक गर्जना की। सिंहकी गर्जनासे शिष्यके तो हाथ-पैर ढीले हो गये और वह घबराकर वृक्षपर चढ़ गया। खैयास तो खुदाकी बंदगीमें मग्न होनेसे

नमाज़ पढ़ते रहे। थोड़ी देरमें सिंह वहाँसे चला गया, तब शिष्य वृक्षपरसे नीचे उतरा। नमाज़ पूरी होनेपर दोनों चल निकले। चलते-चलते रास्तेमें खैयासको मधुमक्खीने डंक मारा जिससे उनके मुखसे चीस निकल पड़ी। शिष्य बोला, 'यह कैसे आश्चर्यकी बात है ! हाथीको थर्रा देनेवाले सिंहके सामने उँह तक नहीं की और इस मच्छर जैसी मधुमक्खीके डंकसे चिल्ला उठे !'

खैयासने कहा, 'उस समय मैं परमेश्वरके ध्यानमें डूबा हुआ था, इस समय तेरे साथ — मनुष्यके साथ हूँ।

परमात्माके साथ एकतान होनेवालेको विश्वकी कोई शक्ति नहीं डरा सकती।



माधवराव पेशवाके मुख्य न्यायाधीश और महान राज्यसेवक श्री रामशास्त्रीका नाम महाराष्ट्रके इतिहासमें अमर है। वे सदा एक आदर्श राजसेवकके रूपमें कार्य करते और बिना किसी आडम्बरके सतत लोकसेवामें लगे रहते थे।

एक बार उनकी धर्मपत्नीका किसी कारणवश राजमहलमें जाना हुआ। महारानीने उन्हें देखा तो बिलकुल सादी साड़ी और शरीरपर कोई खास आभूषण भी नहीं। महारानीको लगा कि गुरुपत्नीकी ऐसी स्थिति हो तो वह राज्यके लिए निन्दाका कारण है ऐसा विचारकर महारानीने गुरुपत्नीको नये वस्त्र,

अस्त्रंकार एवं भूषणसामग्री दी और बड़ी डोलीमें बिठाकर उनका योग्य सन्मान करके वापस उनके घर भेजा। राजसेवकोंने रामशास्त्रीके घरका द्वार खटखटया, परन्तु वह खुला और तुरन्त बन्द हो गया। राजसेवकोंने कहा कि शास्त्रीजी, आपकी धर्मपत्नी आर्यी हैं, परन्तु शास्त्रीजीने उन्हें बदले हुए रूपमें देखकर द्वार बन्द कर दिया था।

उनकी पत्नी बात समझ गयीं। राजमहलमें वापस ले चलनेके लिए राजसेवकोंसे कहा। वहाँ जाकर वस्त्र, आभूषण आदि उतारकर अपने सादे कपड़े पहने और पैदल चलकर घर आर्यी तब घरका द्वार खुला ही था। शास्त्रीजीने उनका खूब प्रेमसे आदर किया।

शास्त्रीजीने कहा, 'ये मूल्यवान वस्त्र, आभूषण और शृंगारसाधन तो राजपुरुषोंको शोभा देते हैं, अथवा अपना अज्ञान छिपानेके लिए मूर्ख लोगोंको शोभा देते हैं। सौम्य और विवेकी पुरुषोंकी तो सादगी, संतोष और शीलरूपी वस्त्र ही सच्ची शोभा है।

✱

भारतके अर्वाचीन महापुरुषोंमें न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रामडे एक प्रसिद्ध व्यक्ति हो गये हैं।

एक दिन उनकी धर्मपत्नी रमाबाईने मालदा आम सुधारकर उन्हें खानेको दिया। दो-तीन फाँक खाकर उन्होंने कहा कि

बाकीके आम घरके अन्य सदस्योंको और नौकरोंको देना, आम बहुत स्वादिष्ट हैं।

रमाबाई : आम स्वादिष्ट हैं तो अधिक खाना चाहिए, दो-तीन फाँक खाकर क्यों रुक गये ? क्या स्वास्थ्य ठीक नहीं है ?

रानडेजी : जो वस्तु स्वादिष्ट लगे उसे अधिक नहीं खाना चाहिए। जीभको उत्तेजन मिलनेसे हमें उसका चाकर बनना पड़ता है।

रमाबाई : आपकी ऐसी अटपटी बात मुझे समझमें नहीं आती।

रानडेजी : सुन, एक बात कहता हूँ। मैं जब बम्बईमें पढ़ता था और विद्यार्थीके रूपमें होस्टेलमें रहता था तब पड़ौसमें एक बहन रहती थी। वह सम्पन्न घरकी होनेसे उसे प्रतिदिन तीन-चार शाक खानेकी आदत हो गयी थी। अचानक घरकी स्थिति बिगड़ी और उस बहनकी दशा सामान्य हो गयी। अब उसे एक शाक लाना भी कठिन हो गया। भोजन करते समय वह हमेशा दुःखी रहती थी। अनेक शाकका स्वाद चखनेकी आदत हो गयी थी इसी बातको याद करके उसे व्याकुलताका अनुभव होता था। जबसे मैंने यह देखा तभीसे निश्चय किया कि बहुत स्वादिष्ट वस्तु अधिक या बारंबार नहीं खाना। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो जीभका गुलाम बननेसे दुःखी होनेका अवसर आयेगा।

स्वामीकी बात सुनकर रमाबाई प्रसन्नतापूर्वक इस विचारसे सहमत हुई और अपने काममें लग गयीं।

*

बंगालके सुप्रसिद्ध उपन्यासकार और 'वंदे मातरम्' गीतके रचयिता श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायके नामसे कदाचित् ही कोई अपरिचित होगा। उन्होंने अमुक विषयपर अपना अभिप्राय प्रगट किया था परन्तु बादमें उसकी सत्यता न लगनेसे उस अभिप्रायमें परिवर्तन किया। इसप्रकार अपना अभिप्राय बदलनेसे उनपर बहुत-से लोगोंने 'चंचल, अस्थिरचित्त आदि' आक्षेप किये। उसके स्पष्टीकरणमें श्रीयुत बंकिमचन्द्रने कहा कि जिसे कभी भी अपना अभिप्राय बदलनेकी आवश्यकता नहीं होती वह महापुरुष है, और जो अपने प्रथम अभिप्रायको भूल-भरा जानते हुए भी उसीको पकड़े रखता है वह कपटी है। मैं महापुरुष तो हूँ नहीं और कपटी बननेकी मेरी इच्छा नहीं है, इसलिए मुझे जो सत्य प्रतीत हुआ वही प्रगट किया है। बंकिमबाबूके इस उत्तरका अचूक प्रभाव हुआ और लोग, उनपर किये गये आक्षेपोंके लिए पछताने लगे।

✱

श्री देशिकजी नामक एक बड़े विद्वान-भक्तके जीवनका यह प्रसंग है। श्री रामानुजाचार्यकी परम्परामें, तेरहवीं शताब्दीमें हुए वे एक प्रसिद्ध सन्त थे।

उनकी भक्ति और विद्वत्ता देखकर अनेक लोग उनसे

ईर्ष्या करते, और लोकदृष्टिमें वे हलके दिखाई दें ऐसा कुछ करनेके प्रयत्नमें ये ईर्ष्यालु लोग लगे रहते थे।

एक दिन इन लोगोंने पादरक्षकोंका (जूतोंका) हार बनाकर उस भक्तकी कुटीरके द्वारपर लटका दिया। दूसरे दिन भक्तराजने यह देखा तब वे निम्नलिखित श्लोक बोले :

कर्मावलम्बकाः केचित् केचिज्ज्ञानावलम्बकाः।

वयं तु हरिदासानां पादरक्षावलम्बकाः॥

अर्थात् कुछ लोग निष्काम कर्मयोगका आश्रय करते हैं और कुछ ज्ञानयोगका आश्रय करते हैं पर हम तो भगवानके दासोंके पादरक्षकोंका अवलम्बन लेते हैं।

जब अपने प्रपंचकार्यका सच्चे भक्तपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तब वे निराश हुए। उलटे, इस प्रसंगसे भक्तके अन्तरमें भगवद्भक्तोंके प्रति भावना अधिक बढ़ी हुई देखकर इन ईर्ष्यालु लोगोंकी आँखें खुल गयीं। वे लोग सच्चे भक्तके घर गये और उनके पैरोंमें गिरकर अपने दुष्कृत्यके लिए क्षमा प्रदान करनेकी प्रार्थना की।

संतके हृदयमें सच्चे भक्तके प्रति कैसा अहोभाव होता है उसका यह प्रसिद्ध दृष्टान्त है।

*

जब मालवाकी गद्दीपर राजा भोजका नया-नया राज्याभिषेक हुआ था उस समयकी यह बात है।

एक दिन राजा प्रातःकालमें अपने क्रीडा-उपवनकी ओर जा रहा था। मार्गमें उसने एक तेजस्वी, सौम्य और पवित्र ब्राह्मणको देखा, उसने अपना रथ रोका और ब्राह्मणको नमस्कार किया। किसी भी प्रकारका आशीर्वाद देनेके बदले उस ब्राह्मणने कुछ क्षणोंके लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं।

राजा विस्मयको प्राप्त हुआ और ब्राह्मणसे पूछा, 'विप्र, मुझे आशीर्वाद देनेके बदले तुमने आँखें क्यों बन्द कर लीं?' ब्राह्मणने कहा, महाराज ! प्रभुने आपको अपार सम्पत्ति दी है, परन्तु आप उसका थोड़ा भाग भी दानके लिए उपयोगमें नहीं लेते। शिबि और कर्ण जैसे दानवीरोंके उत्तराधिकारी आप, दानधर्मको भूलकर कृपण हुए हैं इसलिए मैंने आपको नहीं, परन्तु आपके लोभी स्वभावको देखकर अपनी आँखें बन्द कर लीं।

राजा भोज विवेकी और विचारक थे। सत्य बोध मिलते ही जाग्रत हो गये, और ब्राह्मणका आभार मानते हुए कहने लगे कि तुम्हारे जैसे सत्यवादी और राजाके दुर्गुण बतानेवालेके साहसको धन्य है। राजभण्डारमेंसे अभी तुम्हें एक लाख रुपये दिये जायेंगे, और जब भी किसी सत्कार्यके लिए विशेषकी आवश्यकता हो तब राजदरबारके द्वार खटखटाना।

यही गुणग्राही-स्वभाववाले राजा भोज आगे जाकर अपनी महत्ता, कलाप्रियता, सत्यनिष्ठा, दानवीरता, न्याय आदि गुणोंके कारण भारतके महान सम्राटोंमें गिने गये।

*

लगभग २५०० वर्ष पहलेकी बात है।

बौद्ध भिक्षुओंका संघ बिहारमें विहार करता था। मध्याह्नका समय था अतः भिक्षाभोजनसे निवृत्त होकर भिक्षुगण आराममें था।

‘मगधराज बिम्बिसार राजसम्पत्तिकी दृष्टिसे सबमें बड़े हैं’ एक भिक्षुने कहा।

उसकी बात काटकर दूसरा भिक्षु बोला, ‘कोशलके राजा प्रसेनजित सबसे बड़े हैं।’

इसप्रकार एक-दूसरेके साथ चर्चा हो रही थी। तभी बुद्धदेव पधारे और पूछा, ‘क्या बातचीत चलती है?’

‘प्रभु! बिम्बिसारका वैभव बड़ा या प्रसेनजितका वैभव बड़ा इसकी चर्चा चल रही थी।’ – तीसरे भिक्षुने अपने आसनसे उठकर नम्रतासे कहा।

प्रभु बोले, ‘हे भिक्षुओ! संसारसे विरक्त होकर तुम आत्मकल्याणके मार्गमें लगे हुए हो। तुम्हें ऐसी तुच्छ संसारके सुखोंकी बातें नहीं करनी चाहिए, या तो धर्मवार्ता करो अथवा मौन रहो।’

भिक्षुओंने मनोमन लज्जित होकर मुख नीचे करके प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य की।



विक्रमकी दशवीं शताब्दीकी बात है।

उस समय काश्मीरमें महाराजा यशस्करदेव राज्य करते थे। प्रजा सर्वप्रकारसे सुखी थी और राजा-प्रजाके बीच पिता-संतान जैसा सम्बन्ध होनेसे शान्ति और मेल-जोलका वातावरण था।

एक दिन महाराजा राजदरबारमें बैठे थे उस समय द्वारपालने आकर समाचार दिये कि एक मनुष्य आत्महत्या करनेके लिए राजद्वारपर आकर खड़ा है। राजाने तुरंत ही उसे अन्दर बुलाकर पूछा, 'भाई, तुझे किस दुःखके कारण ऐसा करनेका समय आया है ?'

उस व्यक्तिने अपनी बात प्रस्तुत करते हुए कहा कि 'मैं इस गाँवमें दस वर्ष पहले खूब धनसम्पन्न नागरिकके रूपमें रहता था परन्तु भाग्य बदलते मेरी सर्व सम्पत्ति समाप्त हो गयी और मेरे रहनेका मकान भी बेच देना पड़ा। अपनी पत्नीके निर्वाहके लिए अपने मकानका कुआँ और आसपासकी पाँच फुट जितनी जगह मैंने रखी थी, जहाँ माली लोग आकर बैठते, फूल बेचते और मेरी पत्नीका निर्वाह भाड़ेमेंसे हो जाता।'

'मैं विदेशसे कमाकर वापस आया और देखा तो मेरी पत्नीको कुएँके पासकी जगहसे खदेड़ दी गयी थी और वह जगह मकान-मालिकने पचा ली थी। राज्यके पास न्याय माँगते हुए मैं निराश हुआ हूँ।'

राजाने उस व्यक्तिको शान्त किया। उसके बाद राजाने

सभी सम्बन्धित व्यक्तियोंको उपस्थित होनेका आदेश दिया। न्यायाधीशोंने कहा कि महाराजा साहब ! न्याय सही है। राजाने मकान-मालिककी अँगूठीका हीरा उसके घर भिजवाकर घरबिक्रीसे सम्बन्धित सभी कागज-पत्र मँगवाये और मूल दस्तावेजके साथ मिलान करके देखा तो पता चला कि 'कुआँरहित मकान' की जगह 'कुआँसहित मकान' ऐसा दस्तावेजमें लिखा था, और बिक्री-दस्तावेज लिखनेके लिए राजलेखकको एक हजार दीनार दिये गये थे।

तुरन्त ही राजलेखकको बुलवाया गया। उसने अपराधको स्वीकार किया। राजाने मकान बिकाऊ लेनेवाले नागरिकको उसी समय राज्य छोड़कर चले जानेकी आज्ञा दी और राजलेखकको रिश्वत लेनेके अपराधमें नियुक्त पदपरसे पाँच वर्षके लिए हटा दिया।

न्याय माँगने आये व्यक्तिने राजाकी न्यायप्रियता, युक्ति और प्रजावात्सल्य देखकर अंतरसे राजाको आशीर्वाद दिये और योग्य न्याय मिलनेसे आपघातका विचार छोड़ दिया।

सत्यकी विजय हुई। सर्वत्र - राजदरबारमें और नगरमें आनन्द फैल गया।

✱

आद्य जगद्गुरु शंकराचार्यके सम्बन्धमें ऐसा कहा जाता है कि उनके शिष्य उनका अंध अनुकरण करते थे। एक

दिन वे शिष्योंके साथ बाजारके बीचमेंसे जा रहे थे तब उन्होंने ताड़ीवालेकी दुकानसे ताड़ी पी। अनसमझ शिष्य भी गुरुका अनुकरण करके एक-दूसरेके सामने देखकर मलकते-मलकते ताड़ी पीने लगे। जगद्गुरु आगे चले, कहीं एक जगहपर सीसा गलाया जा रहा था वहाँ जाकर वे खड़े रहे और कढ़ाईमेंसे उबलता हुआ सीसा लेकर पीने लगे ! शिष्य एक-दूसरेके सामने देखते हुए मलिन मुख करके जड़ जैसे खड़े रहे, सीसा पीनेका किसीमें साहस नहीं हुआ। तब शंकराचार्यने कहा, 'तुम दुर्गुणोंका अनुकरण करना चाहते हो, जो तुम्हारे लिए नर्कका कारण है और स्वर्गका पद देनेवाले सदगुणोंका तुम अनुकरण नहीं करते।'

इतना कहकर शिष्योंको उपदेश देते हुए उन्होंने कहा : 'गुरु कहे सो करना, गुरु करें वैसा नहीं करना।' यह सुनकर सब शिष्य श्रीमद् शंकराचार्यके पैरोंमें गिरकर क्षमा माँगने लगे।

*

२८

कविका सच्चा मूल्यांकन

जब भारतमें सम्राट हर्षका शासन प्रवर्तमान था उस समयकी यह बात है। काश्मीरके महामहिमके रूपमें उन्होंने मातृगुप्त नामक एक राज्याधिकारीकी नियुक्ति की थी। मातृगुप्त एक उच्च कोटिके कवि और उदारमनके व्यक्ति थे।

उस कालमें भारत एक महान देश था। कला, साहित्य और

संस्कार, जैसे प्रजाको प्रिय थे वैसे राजाको भी प्रिय थे।

सातवीं शतीके महाकवियोंमें मेंठकी भी गणना होती थी। एक समय वे मातृगुप्तके राज्यमें पधारे। महाकविका आगमन होनेसे राजा और प्रजा सभी प्रसन्न हुए।

काश्मीरके राजदरबारमें खूब भीड़ इकट्ठी हुई थी। आज महाकवि मेंठ अपना प्रसिद्ध काव्य 'हयग्रीववध' प्रस्तुत करनेवाले थे इसलिए अनेक कलाकार और कविगण भी वहाँ पधारे थे।

'महाराज ! आपके जीवनमें श्री और सरस्वतीका सुभग संगम हुआ है;' ऐसा कहकर कविने काव्यका आरम्भ किया। जैसे-जैसे काव्य-पठन आगे बढ़ता गया वैसे-वैसे समस्त श्रोतागण रसविभोर होकर काव्यरसका आनन्द लेने लगे, परन्तु महाकविने देखा कि राजाके मुखपर कोई विशेष भाव दृष्टिगोचर नहीं होता अथवा धन्यवादके शब्द भी उनके मुखसे नहीं निकले।

ऐसा लगनेसे कविराज अपनी रचनाके पृष्ठोंको बाँधने लगे और अंतरमें विचार किया कि राजाको या तो अभिमान हो गया है या फिर मेरे कवित्वकी ईर्ष्या हुई है। ऐसे राजासे सन्मानकी आशा कैसे की जा सकती है ? अभी कविके मनमें ऐसे विचार थे तो राजाके मनमें अन्य ही विचार चल रहे थे और उसके फलस्वरूप राजाने उस रचनाके नीचे सुवर्णपात्र रख दिया और कहा :

'कविराज ! आप धन्य हैं। आपकी रचनाके एक-एक शब्दमें ऐसा माधुर्य और रसपूर्णता है कि उसका एक कण भी भूमिपर नहीं गिरना चाहिए ऐसा विचारकर मैं आपसे अपनी रचनाको इस सुवर्णपात्रमें रखनेकी प्रार्थना करता हूँ।'

सभी राज्य-सभासद यह देखकर स्तब्ध हो गये। कविके हर्षकी सीमा न रही। राजा, महाकविके सामने टक-टक देखकर प्रेम बरसाते थे और महाकवि अपनी कृतज्ञता प्रगट करते थे कि उन्हें अपनी वस्तुका सही मूल्यांकन करनेवाला आदरकर्ता जौहरी मिल गया था !

*

२९

‘मात्र इतनी बातसे पतन’

लगभग तीन हजार वर्ष पूर्वकी यह बात है। उस समय बनारसमें जैनोंके तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथके पिता राजा अश्वसेन राज्य करते थे और पड़ौसी राज्यके नाते उनकी मगध नरेशके साथ अच्छी मित्रता थी।

इन दिनों बिहार (मगध)की माही नदीके किनारे उदरामपुत्र नामक एक योगी रहते थे। मगधेश्वर उनके शिष्य थे। इन महात्माको आकाशगामिनी विद्या सिद्ध होनेसे ये प्रतिदिन राजमहलमें आकर आहार करके पुनः आकाशमार्गसे वापस चले जाते थे।

एक बार मगधेश्वरको आवश्यक कामसे अचानक कहीं बाहर जाना हुआ इसलिए अपने एक मंत्रीको महात्माका स्वागत और भोजनकी व्यवस्था करनेका निवेदन करके वे बाहर चले गये।

इस ओर योगी आहारके लिए पधारे। मंत्रीकी एक सुशील, अति सुन्दर कन्या थी उसने योगीका स्वागत करके

सेवाभावसे आहारदानकी तैयारी की। उस कन्याका लावण्य देखकर योगीको विस्मय हुआ। थोड़ा-सा आहार लेकर, 'बस अब कुछ नहीं चाहिए' ऐसा कहते हुए फिरसे कन्याकी ओर अयोग्य दृष्टिसे देखा। पानी पीकर योगी आकाशमार्गसे वापस जाने लगे, परन्तु उनकी शक्ति कुण्ठित हो गयी।

योगानुयोग कि उसी समय मगधेश्वरने विज्ञप्ति करायी कि 'आज तपस्वी उद्ररामपुत्र मगधजनोंको दर्शन देंगे और लम्बे समयकी लोकेच्छाको पूर्ण करेंगे।' - योगीने जैसे-तैसे राजासे अपनी बात मनवा ली और धीरे-धीरे पैदल चलकर नदीकिनारे अपनी कुटियामें पहुँच गये परन्तु उनकी सिद्ध की हुई विद्या तो नष्ट हो चुकी थी।

आत्मसाधनाकी सभी भूमिकाओंमें संयमका कितना महत्त्व है, और थोड़ी भी असावधानीसे कैसा पतन होता है, यह हमें इस घटनासे सीखना है।

*

३०

सच्ची लगनसे कार्यसिद्धि

बारहवीं शताब्दीके आरम्भमें देवगिरि (दक्षिण महाराष्ट्र) में यादव वंशके राजा राज्य करते थे।

वहाँके एक छोटे-से गाँवमें एक विद्यार्थी परिश्रम करते हुए भी परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं हो पाया, इसलिए उसने विचार किया कि 'मैं पढ़नेके योग्य नहीं हूँ अतः मुझे अध्ययन छोड़ देना चाहिए।' ऐसा विचारकर वह गाँवके बाहर कुएँके

पास जाकर बैठा। उसने देखा कि गाँवकी स्त्रियाँ उसी कुएँसे पानी भरती थीं और पानी खींचते समय रस्सीकी रगड़से कुएँके सिरेवाले पत्थरपर गहरे निशान पड़ गये हैं। उसने मनमें विचार किया कि वारंवार घिसानेपर यदि कोमल रस्सीसे ऐसे कठिन पत्थरमें भी निशान पड़ सकते हैं तो निरंतर विद्याभ्यास करनेसे मैं विद्वान क्यों नहीं बन सकता ?

तुरंत उस विद्यार्थीने निराशाका त्याग किया। वह नियमित-रूपसे पाठशालामें जाने लगा और सतत विद्याभ्याससे उसकी बुद्धिका विकास हुआ। थोड़े समयमें वह अनेक विद्याओंमें पारंगत हो गया।

इस पुरुषकी विद्वत्ता, चातुर्य और कलाकौशल्य देखकर देवगिरिके यादव-नरेश महादेवरावने राजदरबारमें राजपंडितके रूपमें उसकी नियुक्ति कर दी। इन्होंने पाणिनीके महान व्याकरणग्रन्थ पर एक 'मुग्धबोध' नामक सरल टीका भी लिखी है।

इसप्रकार सतत विद्याभ्यासके द्वारा एक मूर्ख विद्यार्थीसे एक महान राजपंडित बननेवाले दूसरे कोई नहीं परन्तु वे थे पंडितराज श्री पोपदेवजी। इनकी गणना, उस समयके ज्ञानेश्वर और हेमाद्रि जैसे महापुरुषोंके साथ आदरपूर्वक की जाती है।

✽

चम्पानगरीके बाहर एक बड़ी खाई थी। उस खाईका पानी बहुत गंदा और दुर्गन्धयुक्त था। एक बार चम्पानगरीके

राजा अपने सुबुद्धि नामक जैन मंत्री एवं अन्य सभासदोंके साथ उस खाईके पाससे निकल रहे थे। राजा और सभी सभासदोंने दुर्गन्धके कारण नाकके आगे कपड़ा लगा लिया परन्तु सुबुद्धि मंत्रीने वैसा नहीं किया। जिन सभासदोंको मंत्रीके प्रति ईर्ष्या थी उन्होने ज़रा धीरेसे कहा, 'राजन् ! आपको इस खाईका पानी सिर फट जाय ऐसी दुर्गन्धवाला लगता है परन्तु आपके ये मंत्री आपका उपहास करते लगते हैं। देखिए तो सही, हम सभीने नाकके आगे कपड़ा लगा लिया किन्तु इनको तो सुगन्ध आती लगती है !' ऐसे वचन सुनकर भी सुबुद्धि मंत्री सहेतुक मौन रहे। उन्होने निश्चय किया कि 'समय आने पर राजाको सही परिस्थितिका भान कराऊँगा।'

कुछ समयके पश्चात् मंत्रीने राजा और सभासदोंको अपने घर भोजनका निमंत्रण दिया। समयपर सबने भोजन किया। भोजनके बाद पानी दिया गया। पानी पीते-पीते राजाको मंत्रीके प्रति ईर्ष्याभाव जाग्रत हुआ, क्योंकि ऐसा स्वादिष्ट और सुगन्धित जल राजाने पहले कभी नहीं पिया था। राजाने क्रुद्ध होकर मंत्रीसे कहा कि 'मेरे राज्यमें रहकर अकेले-अकेले ऐसा पानी पीते हुए तुम्हें शरम नहीं आती ?' सभासदोंने भी राजाकी बातमें साथ दिया।

मंत्रीने राजासे प्रार्थना की कि 'मुझे अभय-वचन दें तो आपकी बातका स्पष्टीकरण करूँ।' राजाने वचन दिया।

मंत्री सबको मकानके तलघरमें ले गये। तलघरमें उस दुर्गन्धयुक्त खाईका पानी लानेकी व्यवस्था की गयी थी। यही गंदा पानी वैज्ञानिक रीतिसे छानकर शुद्ध किया जाता था, उसमें अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्य मिलाये जाते थे। मूलरूपसे

पानी तो उस खाईका ही था, परन्तु उसके स्वरूपमें परिवर्तन किया गया होनेसे मधुर और सुगन्धित बना था। राजाने यह बात जानकर आनन्द प्रगट किया, और किसी भी वस्तुके मात्र बाह्य दिखाव परसे उसके सम्बन्धमें कोई अभिप्राय निश्चित नहीं करनेका निर्णय लिया। और फिर, बाहरसे खराब दिखनेवाली वस्तुको अच्छी बनायी जा सकती है, पुद्गलमात्र परिवर्तनशील है यह बात भी राजाको समझमें आ गयी।



अमदावादके प्रसिद्ध सन्त सरयूदासजी महाराजके पूर्वाश्रमकी यह बात है।

गृहस्थाश्रममें भी उनपर सत्संग और भक्तिकी धुन सवार रहती थी। एक दिन वे अपनी दुकान पर बैठे थे, वहाँ उन्हें समाचार मिले कि अमुक सन्त-महात्मा अभी-अभी पधारे हैं और वृक्षके नीचे विश्राम कर रहे हैं। उन्होंने अपनी दुकान तुरंत बन्द कर दी और शीघ्रतासे सन्तोंके पास पहुँचकर उनका विनय-सत्कार करके अपने योग्य सेवाके लिए निवेदन किया।

मध्याह्नके लगभग बारह बज गये थे, इसलिए गाँवमें भिक्षाके लिए जाना भी सन्तोंके लिए कठिन था। सुबहसे कुछ लिया नहीं था इसलिए भोजनकी आवश्यकता तो थी ही। सरयूदासजी इस स्थितिको तुरंत ही समझ गये।

‘थोड़ी देरमें फिरसे मैं आपकी सेवामें उपस्थित होता हूँ’ ऐसा कहकर वे अपने घर गये। रसोईघरमें देखा तो सेर-आध सेर जितना ही आटा था, उन्होंने धर्मपत्नीको शाक वगैरह तैयार करनेको कहा और स्वयं गेहूँ पीसने बैठ गये। लगभग डेढ़ घण्टेमें सादा भोजन तैयार करके वे सन्तोंकी सेवामें पहुँचे।

सन्तोंने संतोषपूर्वक भोजन समाप्त किया। भक्तकी सन्त-सेवा, स्वावलम्बन और अपूर्व लगन देखकर महात्माओंने धर्मलाभका आशीर्वाद दिया।

✱

३३

अनपढ़के उन्नत संस्कार

गुजरातके प्रसिद्ध समाजसेवी श्री रविशंकर महाराज, तंगीके सवासौ दिनोंमें किसी छोटे गाँवमें एक मन गुड़ लेकर घर-घर बाँट रहे थे।

एक छोटे-से घरकी नन्ही बालिकाने कहा, ‘दादाजी, मैं यह गुड़ नहीं लूँगी।’

‘क्यों नहीं?’ महाराजने पूछा।

‘क्यों कि मैंने उस गुड़को पानेके लिए परिश्रम नहीं किया है।’

‘तुझे ऐसा किसने सिखाया?’

‘मेरी माँने।’

महाराज और नन्ही बालिका उस माताके पास गये। महाराजने बालिकाकी मातासे पूछा, ‘क्यों बहन, तूने ही अपनी

बालिकाको ऐसी शिक्षा दी है ?' माताने कहा 'हाँ'। तब महाराजने पूछा, 'तूने धर्मशास्त्र पढ़े हैं ?' माताने कहा, 'नहीं महाराज, मैं पढ़ी हुई नहीं हूँ।'

'तुम्हारा निर्वाह कैसे होता है ?'

'मैं जंगलमें जाकर लकड़ी काट लाती हूँ और उसमेंसे जो मिलता है उससे निर्वाह हो जाता है।'

'तो क्या इस बालिकाके पिताजी...'

बालिकाकी माता उदास हो गई। पुनः स्वस्थ होकर बोली, 'बालिकाकी छोटी उम्रमें ही उसके पिताका स्वर्गवास हो गया। वे अपने पीछे तीस बीघा जमीन और दो बैल छोड़ गये थे। मेरा स्वास्थ्य अच्छा था और स्वाश्रयपूर्वक परिश्रम करके आजीविका चला सकती थी इसलिए मैंने वह सम्पत्ति बेच दी, और उसमेंसे गाँवके लोगोंके लिए एक कुआँ और पशुओंके लिए पानीका एक हौद गाँवके सेठकी देखरेखमें बनवा दिये।

गाँवमें अब पीनेके पानीकी कमी नहीं है।'

एक अपढ़ गाँवकी बाईसे ऐसी यथार्थता सुनकर महाराजश्री और सभी कार्यकर लोग सानन्द आश्चर्यचकित हुए।



विन्ध्याचल पर्वतकी श्रेणियोंमें अकेला बुड़सवार तीव्र गतिसे- चला जा रहा है। अचानक उसने एड़ी लगाकर घोड़ा

रोक दिया। ऐसे निर्जन प्रदेशमें रुकनेका कारण क्या ?

‘समुझि लेओ रे मना भाई,
अंत न होइ कोई अपना।’

महात्मा ब्रह्मगिरिके शिष्य साधु मनरंगीर अपनी धुनमें लीन होकर यह पद गा रहे थे, परन्तु ये शब्द उस घुड़सवार सिंगाजीके हृदयको बींधकर आरपार निकल गये।

‘महाराज ! अपने चरणोंमें मुझे स्थान दें। आपके शब्दामृतसे मुझे नवजीवन प्राप्त हुआ है।’ इन शब्दोंके साथ ही घुड़सवारने अपना मस्तक साधुके चरणोंमें झुका दिया। ‘अब मुझे राजदूतके रूपमें काम नहीं करना है। भगवानके भजनामृतका आनन्द छोड़ना पड़े, ऐसे सांसारिक प्रपंच अब मुझे बिलकुल नहीं चाहिएँ’ - घुड़सवारके उद्गार थे।

‘सिंगाजी, वास्तवमें तो तुम्हारा ही सन्त जैसा हृदय है, इसलिए तुम्हीं धन्यवादके पात्र हो।’ सन्तने प्रत्युत्तर दिया।

इस घटनाके पश्चात् सिंगाजी, मध्यप्रदेशके भामगढ़-राज्यके रावके यहाँसे निवृत्त होकर, पीपाल्याके जंगलमें कुटी बनाकर सत्संगका लाभ लेते हुए परमार्थसाधनामें जीवन बिताने लगे।

इन्होंने भगवद्भक्तिके अनेक सुन्दर पद बनाये हैं। सन्त सिंगाजी, महात्मा तुलसीदास और मीराबाईके समकालीन थे अर्थात् सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें वे मध्यभारतके एक महान सन्तके रूपमें विद्यमान थे।



ईस्वी सन् १८६५का वर्ष।

बंगालमें ऐसा दुष्काल पड़ा कि अनाज कहीं देखनेको भी नहीं मिला। इतना ही नहीं, बड़ी संख्यामें लोग अपने कुटुम्ब और पशुओं सहित प्रदेश छोड़कर जाने लगे।

ऐसे समयमें बरद्वानमें श्रीयुत ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके पास एक तेरह-चौदह वर्षका किशोर आया। भूख और वेदनासे वह दुबला दिखाई देता था, उसने विद्यासागरजीके पास एक पैसा माँगा।

विद्यासागर : मैं तुझे चार पैसे दूँ तो ?

किशोर : साहब, मेरी हँसी मत उड़ाइए, मैं सचमुच विपत्तिमें हूँ।

विद्यासागर : मैं हँसी नहीं उड़ाता। कह तो सही, तू चार पैसोंका क्या करेगा ?

किशोर : दो पैसेका खाना लेकर दो पैसे माँको दूँगा।

विद्यासागर : और चार आने दूँ तो ?

किशोर : खानेके बाद जो पैसे बचेंगे उनमेंसे आम लाऊँगा और उन्हें बेचकर लाभ कमाऊँगा।

विद्यासागरजीने किशोरको उद्यमी और प्रामाणिक देखकर एक रुपया दिया। किशोरका मुख कृतज्ञता और प्रसन्नतासे खिल उठा।

योगानुयोगसे दो वर्षके अन्तराल बाद विद्यासागरजीको फिरसे बरद्वान आनेकी इच्छा हुई। वे बाज़ारमेंसे जा रहे थे कि एक

नवयुवकने उन्हें प्रणाम करके कहा, 'क्या आप थोड़ी देरके लिए मेरी दुकान पर पधारनेकी कृपा नहीं करेंगे ?'

विद्यासागर : भाई, पहचानके बिना मैं तेरी दुकानपर कैसे आ सकता हूँ ?

इतना सुनते ही उस नवयुवककी आँखोंमेंसे टपाटप आँसूकी धार बहने लगी । गद्गद होकर उसने दो वर्ष पूर्वकी घटना विद्यासागरजीको कह सुनायी । अब वह फेरीवालेमेंसे दुकानदार और उसमेंसे बड़ा व्यवसायी बन गया था । यह जानकर विद्यासागरजीको बड़ा संतोष हुआ ।

विद्यासागरजीने उस नवयुवकको प्रोत्साहन दिया और आशीर्वाद प्रदान किये, एवं कुटुम्बके एक बड़े व्यक्तिकी भांति आत्मीयतापूर्वक उसके साथ बैठकर बातें कीं ।

इस युवकके साथ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुषकी इतनी सहृदयता क्यों हैं ऐसे विचारसे आसपासके लोग आश्चर्यका अनुभव करने लगे, परन्तु सुपात्रदानकी महिमाका प्रत्यक्ष फल उनके ज्ञानसे बाहर था !



एक स्त्रीको किसी पुरुषके साथ प्रेमबन्धन हो गया । वह उसके प्रेममें पागल थी । एक समय प्रियतमका वियोग होनेसे उसने अन्नजलका त्याग कर दिया । उसका शरीर क्षीण होने लगा, कुछ दिन बाद अचानक उसे अपने प्रियतमके

समाचार मिले, वह उसी समय प्रेमोन्मत्त होकर उससे मिलने चल निकली। वह जहाँसे जा रही थी वहाँ मार्गमें अकबर बादशाह जाजम बिछाकर नमाज़ पढ़ रहे थे। स्त्री तो प्रियतमके विचारोंमें मग्न थी इसलिए उसे कुछ ध्यान रहा नहीं और बादशाहकी जाजम परसे चली गयी। यह सब नमाज़ पढ़ते हुए बादशाहने देखा। उनके क्रोधका कोई पार नहीं रहा, परन्तु नमाज़के समय वह शान्त रहा। वह स्त्री प्रियतमसे मिलकर वापस आयी तब बादशाहने उसे कहा, 'अरी पापिनी ! क्या तुझे पता नहीं था कि वह नमाज़ पढ़नेकी जाजम थी, और बादशाह अकबर नमाज़ पढ़ रहे थे ?' उत्तरमें स्त्रीने कहा; 'मैं तो सामान्य पुरुषके प्रेममें मग्न होनेसे मुझे जाजमका ध्यान नहीं रहा परन्तु आप तो महान खुदाकी वंदगीमें लीन थे, तो फिर मुझे कैसे देख लिया ?'

बादशाहको अपनी भूल समझमें आयी और अपनी आँखें खोल देनेके लिए उन्होंने उस स्त्रीको अभिनन्दन दिये। वास्तवमें, प्रभुके प्रेममें पागल बनकर जगतकी अन्य वस्तुओंको भूले विना प्रभुकी प्राप्ति नहीं होती।

✱

पिछले डेढ़सौ वर्षोंमें, बंगालमें जो अनेक महानुभाव हुए उनमें एक श्री भूदेव मुखोपाध्याय भी थे।

उन्होंने अपने जीवनकालमें ही एक लाख साठ हजार

रूपयेकी अपनी सम्पत्तिका एक ट्रस्ट बनाया और उसमेंसे समस्त भारतीय स्तरके उच्च कक्षाके सदाचारी विद्वानोंको पुस्तकोंके भेंटस्वरूप अथवा विशेष संशोधनके लिए छात्रवृत्तिके रूपमें सहायता भेजना आरम्भ किया। यह छात्रवृत्ति पानेके लिए न तो कोई आवेदन-पत्र भरना पड़ता था और न ही धनराशि लेनेके लिए स्वयं जाना पड़ता था। जो धनराशि नियत हुई हो वह मनीऑर्डर द्वारा उस विद्वानको घर-बैठे ही पहुँच जाती थी।

जब इस ट्रस्टकी प्रथम वार्षिक रिपोर्ट प्रगट होनेवाली थी तब उसमें एक जगह लिखा था : 'जिन-जिन विद्वान अध्यापकोंको इस छात्रवृत्तिका लाभ मिला है उनकी नामावली निम्नप्रकार है।' श्रीमद् मुखोपाध्यायने जब यह पढ़ा तब शीघ्र ही उन्होंने सुधरवाया कि 'जिन-जिन महानुभावोंने इस ट्रस्टकी छात्रवृत्ति स्वीकार करनेकी सहर्ष अनुमति देनेकी कृपा की है उनकी शुभ नामावली निम्नप्रकार है।'

देखिए ! भारतीय संस्कृतिके महान पुरस्कर्ताओंकी विद्वानोंके प्रति और विद्याके प्रति कैसी उदात्त भावना ! उनके मनमें सरस्वतीके आराधक विद्वानोंके प्रति कितना बहुमान था इसका ऐसे प्रसंगों परसे हमें ध्यान आ सकता है। *

हिन्दीके प्रसिद्ध कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी उदारताके लिए अत्यन्त प्रसिद्ध थे। उनके जीवनमें एक समय ऐसा

आया कि स्वयं लिखे हुए पत्र डाकमें डालनेके लिए उनके पास टिकटके पैसे भी नहीं थे। फिर भी वे पत्रोंका उत्तर लिखकर, डाकको अपनी टेबल पर रख छोड़ते थे।

एक बार उनके एक मित्र उनसे मिलनेके लिए आये। उन्होंने डाकका पुलिंदा देखा और सब बात समझ गये। तुरंत टिकट लाकर सब डाक रवाना कर दी।

कुछ समयके बाद भारतेन्दुकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो गयी। वे पुराने मित्र जब भी मिलते तभी भारतेन्दुजी उन्हें डाक टिकटके पाँच रुपये देने लगते परन्तु मित्र तो उनका अस्वीकार ही करते। अंततः भारतेन्दुजीके मित्र उकता गये और कहा, 'यदि अब आप पाँच रुपयेकी बात निकालेंगे तो मुझे आपसे मिलने आना बन्द करना पड़ेगा।'

भारतेन्दुजीने कहा, 'भाई! तुमने मुझे पाँच रुपयेकी सहायता ऐसे समयमें की है कि मैं प्रतिदिन पाँच रुपये दूँ तो भी बदला नहीं उतार सकता। तुम तो मेरे महान उपकारी हो।'



लगभग ईस्वी सन् १७७५की यह बात है। राजस्थानके जयपुर राज्यके तत्कालीन दीवान श्री अमरचन्दजी सौगानी अपने दयालु स्वभाव और दानवीरताके कारण समस्त पश्चिम भारतमें प्रसिद्ध थे।

एक दिन साँझके समय उन्हें समाचार मिले कि जयपुरके पास एक छोटे-से गाँवमें किसी गरीब वृद्धाका इकलौता पुत्र बहुत बीमार है, परन्तु चिकित्सा करानेका उसके पास कोई साधन नहीं है।

दीवान साहबने शीघ्र स्वयं ही वहाँ जानेका निर्णय किया। साँझका समय हो जानेसे घरके सदस्योंने उन्हें प्रातःकालमें जानेका निवेदन किया, परन्तु जिसके हृदयमें करुणाकी ज्योति जल चुकी थी ऐसे दीवानजीने अपने बड़े पुत्रको साथ लेकर आवश्यक सामग्री सहित उस गाँवकी ओर प्रयाण किया।

जयपुरकी सीमा उल्लंघते ही, महाराजा माधवसिंह बाहर गाँवसे लौट रहे थे उनसे उनकी भेंट हो गई। महाराजने पूछा, 'कहिए दीवानजी, इस समय किस ओर ? दीवानजी तो कुछ बोले नहीं परन्तु उनके पुत्रने सब बातें कह सुनायी। यह सुनकर महाराजाने कहा, 'दीवानजी, यह काम आपको स्वयं करनेकी क्या आवश्यकता है, राजवैद्य और अन्य लोगोंको भेज दो तो कैसा ?'

दीवानजीने कहा, 'महाराज, मेरा पुत्र होता तो मैं जाता कि नहीं ? यह भी मेरा पुत्र ही है ऐसा समझकर जा रहा हूँ।'

महाराजाने विशेष टोकटाक नहीं की और दीवानजी स्वयं ही सेवाका यह काम करनेके लिए चल निकले ! धन्य दयावतार और धन्य उनका प्रजावात्सल्य !!

जहाँ राज्यकर्ताओंका प्रजाके प्रति इतना प्रेम हो वहाँ राजाके लिए प्रजा अपने प्राण बिछा दे तो इसमें क्या आश्चर्य ?



ईस्वी सन् १९५०की यह घटना है। मध्यप्रदेशके पन्ना जिलेमें एक छोटा-सा गाँव था। एक किसान अपनी भैंस वेचकर घर वापस आ रहा था परन्तु देर हो जानेसे मार्गमें रात वितानेके लिए एक ठाकुरके यहाँ रुक गया।

वातचीत करते हुए ठाकुरको पता चल गया कि भैंस-बिक्रीकी सातसौ रुपयेकी रकम इस व्यक्तिके पास है। उसकी वृत्ति बिगड़ी और उसने अपने नौकरको गुप्तरूपसे बुलाकर, दूसरे दिन सवेरे उस किसानको गोली मारकर उसके रुपये ले लेनेकी आज्ञा की।

बहुत सवेरे नौकर बन्दूक लिये खेतमें जाकर छिप गया और किसानके आनेकी वाट देखने लगा। इस ओर, किसान उठा परन्तु वह दूसरे मार्गसे निकल गया।

बहुत देर हो गयी किन्तु बन्दूककी आवाज़ नहीं आयी इसलिए ठाकुरने अपने पुत्रको पता लगाने खेतकी ओर भेजा। कुछ-कुछ अँधेरा था अतः किसान आ गया समझकर नौकरने गोली छोड़ दी। गोली लगनेसे ठाकुरका पुत्र मरणको प्राप्त हुआ।

ठाकुरको जब इस विषयमें पता चला तो वह सिर पीटकर रोने लगा, परन्तु अपने ही किये हुए पापका फल स्वयंको मिला इसमें कोई क्या करे ?



महाराष्ट्रके एक छोटे गाँवमें सूर्याजी पंत नामक एक भद्रपरिणामी पुरुष रहता था। उनके घरमें नारायण नामका एक छोटी उम्रका पुत्र था।

बालक अभी तो बारह वर्षका हुआ होगा, परन्तु माँको पुत्रवधूका मुख देखनेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। पिताको भी गम खाकर सम्बन्ध कर देना पड़ा।

बारह वर्षके किशोर नारायणका ब्याह करानेके लिए बराती हर्षपूर्वक रवाना हुए। धूमधामसे सभी लग्नमण्डपमें आ पहुँचे। ब्राह्मणोंने लग्नवेदी तैयारी की थी। मंगलाष्टक आरम्भ होनेपर 'शुभ मंगल सावधान' ये शब्द नारायणके कानमें पड़े और सचमुच जैसे इन शब्दोंका जादुई प्रभाव हुआ हो इसप्रकार वह किशोर सावधान हो गया, चट-पट खड़ा होकर वह भागा और कभी वापस ही नहीं लौटा।

एक तो पूर्वजन्मकी आराधनाके संस्कार, एकान्तवासकी साधना, बारह वर्षका कठिन तप तथा तीर्थयात्रा और सत्संगका लाभ आदि अनेक कारणोंसे यह किशोर आगे चलकर महान योगीके रूपमें प्रसिद्ध हुआ। सारे महाराष्ट्रमें इन्होंने अनेक स्थानों पर मठोंकी स्थापना करके लोगोंमें राष्ट्रीय भावना जगायी और शिवाजी महाराजके गुरुपदपर रहकर उनको हर प्रकारका मार्गदर्शन और सहयोग दिया। वे भारतके सन्तोंमें 'समर्थ गुरु रामदास' के नामसे जाने गये। सादगी, संतोष, सहनशीलता, सर्वधर्म-समभाव, स्वावलम्बन, भारतीय संस्कृतिके

प्रति बहुमान, ऊँच-नीचकी मान्यताका अभाव आदि सिद्धान्तोंका दक्षिण भारतमें प्रचार करके उन्होंने देशकी बड़ी सेवा की।



महाराष्ट्रमें, गोदावरी नदीके किनारे पैठण नामका एक प्रसिद्ध तीर्थ है, वहाँ एकनाथजी नामक एक बड़े महात्मा निवास करते थे।

उस नगरमें, नदीपर नहाने जानेके मार्गपर एक धर्मशाला थी, उसमें एक हरामी और आवारा पठान रहता था। आते-जाते यात्रियोंको परेशान करनेमें ही वह अपना बड़प्पन समझता था।

महात्मा एकनाथजीको परेशान करनेका उसने निश्चय किया और एक दिन नदीमें स्नान करके वापस आ रहे महात्मा पर उसने कुल्ला कर दिया। महात्मा वापस नदीमें जाकर फिरसे स्नान कर आये, तो फिरसे उसने कुल्ला किया। इसप्रकार बहुत बार होता रहा परन्तु एकनाथजीने न तो गुस्सा किया और न कोई प्रतिकार किया। अन्तमें वह पठान पिघल गया और महात्माके पैरों पड़कर कहने लगा, 'महाराज ! आप ही खुदाके सच्चे बंदे हैं, मुझे माफ़ कर दीजिए।'।

एकनाथजीने कहा, "भाई इसमें माफ़ करने जैसा कुछ नहीं है। तेरे कारण आज मुझे गोदावरीमें अनेक बार स्नान करनेका लाभ मिला।"

वह पठान तो स्तब्ध रह गया, और उसका सारा जीवन ही बदल गया। अब वह आते-जाते व्यक्तियों और यात्रियोंको हर प्रकारसे सहायभूत होने लगा।



विश्वविजेता बननेकी महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले नेपोलियन बोनापार्टका बचपनमें बहुत सामान्य स्थितिमें पालन-पोषण हुआ। बादमें विद्यार्थी अवस्थामें पढ़नेके लिए वह 'अकलोनी' नामक नगरमें एक नाईके घर रहा था। नाईकी पत्नी उसके सौन्दर्य और शरीरसौष्ठवके प्रति आकर्षित हुई और अनेक चेष्टाओं द्वारा उसे अपनी ओर खींचनेका प्रयत्न करती थी, परन्तु इस भाईको तो अपनी पुस्तकोंसे फुरसत नहीं मिलती और उसकी ओर कुछ ध्यान नहीं देता। इसप्रकार संयम रखकर उसने विद्याकी आराधना की थी।

थोड़े वर्षोंके बाद जब नेपोलियन फ्रान्सका मुख्य सेनापति बना तब एक बार उसका इस नगरमें आगमन हुआ। नाईकी पत्नी अपनी दुकानमें बैठी थी। नेपोलियनने उससे पूछा, 'यहाँ एक बोनापार्ट नामका विद्यार्थी पढ़ता था, तुम जानती हो?'

उस स्त्रीने कहा, 'जाने दो ऐसे नीरस पुरुषकी बात, वह तो केवल पुस्तकोंका कीड़ा बनकर रहता, शान्तिसे किसीके साथ प्रेमसे मीठी बातें करनेकी भी उसे फुरसत नहीं थी।'

नेपोलियन हँसा। 'तुम्हारी बात सच है, वह था तो

नीरस ही, परन्तु जो तुम्हारी रसिक बातोंमें अटका होता तो सारे देशके प्रधान सेनापति पद तक पहुँचना क्या उसके लिए सम्भव था ?' पुरानी स्मृति ताजी होनेसे वह स्त्री सब बातें समझ गयी और उसने उस महापुरुषका योग्य सम्मान किया।



महात्मा ईसा मसीहके पास धर्मलाभके लिए दो मछुए आये। उन्हें सुन्दरतापर बहुत आसक्ति थी। महात्मा ईसा साहवने कहा, 'तुम्हारी यह सुन्दर-सुन्दर गूँथी हुई मछली पकड़नेकी जालको सदाके लिए त्याग दो तो मैं तुम्हें धर्मका उपदेश दूँ।'

दूसरा एक प्रसंग है : अपनी कीर्ति और प्रतिष्ठाके घमण्डवाला एक व्यक्ति महात्मा ईसाके पास आया। वह यदि दिनमें उनके पास जाय तो उसे स्वयंकी प्रतिष्ठा हलकी पड़नेका भय लगता था, इसलिए उसने रातको महात्मा ईसाके पास जाकर धर्मबोध देनेकी प्रार्थना की। महात्माने उस समय उपदेश नहीं दिया और उस व्यक्तिको दिनमें आनेके लिए कहा।

इसप्रकार जबतक साधकके जीवनमें लक्ष्यका निश्चय न हो तबतक उसमें यथार्थ पात्रता नहीं आती। सद्द्वर्तनद्वारा जब श्रीगुरुका उपदेश पचानेकी शक्ति आती है तभी उनका

सत्य बोध मिलता है। ऐसा हुए बिना बाह्य क्रियाकाण्ड आदि अथवा अन्य जप-तप-शास्त्राभ्यास आदि दीर्घकाल तक करनेपर भी फल नहीं मिलता, कारण कि अपूर्व माहात्म्यरूप परमात्मतत्त्वमें परम प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ तो सच्ची एकाग्रता कैसे प्रगटे और उसके बिना सच्ची समाधि कैसे उत्पन्न हो ?

*

४५

प्रथम स्थानका अधिकारी

उदय मंत्रीके पुत्र बाहडने पिताकी अधूरी रह गई इच्छाको पूर्ण करने जैनोंके शत्रुंजय तीर्थका पुनरुद्धार कराया था। तीर्थोद्धारका कार्य आरम्भ हुआ तब इस पुण्यकार्यमें भाग लेनेके लिए बहुत-से गृहस्थ आये और कहने लगे कि “मंत्रीजी, हमें भी इस पुण्यकार्यमें यथाशक्ति भाग लेने दीजिए। यद्यपि आप अकेले यह कार्य करनेमें समर्थ हैं, तथापि हमें भी पुण्यकार्य करनेमें कुछ हिस्सा देने दीजिए।” गृहस्थ लोग यथाशक्ति पैसे देने लगे। मंत्रीने उन सबके नाम चिट्ठेमें लिखे। इतनेमें ‘भीमो कुलडियो’ नामका एक गरीब वणिक सात पैसे लेकर आया और बोला, ‘मंत्रीजी, मैं ये सात पैसे बड़ी मेहनतसे बचाकर लाया हूँ, विशेष तो मेरे पास कुछ है नहीं। मेरे रोम-रोममें भक्ति उल्लसित हो रही है। मैं जानता हूँ कि इन सात पैसोंका टिप्पणीमें कोई हिसाब नहीं है परन्तु यह अल्प रकम स्वीकारकर मुझे आभारी करें।’

जैसा दानी था वैसा ही उसका स्वीकार करनेवाला था।

मंत्रीने अत्यन्त हर्षोल्लासपूर्वक उन सात पैसोंको स्वीकार किया, परन्तु वे इतने पर ही नहीं अटके। उन्होंने तो टिप्पणीमें सबसे पहला नाम भीमाका लिखा। सेठ लोगोंने टिप्पणी देखकर पूछा, 'मंत्रीजी ! ऐसा क्यों ?' मंत्रीने उत्तर दिया, 'भीमाने जो कमाया और तनतोड़ परिश्रमसे इकट्ठा किया उस सर्वस्वका उसने दान किया, जबकि मैं और आप कमाईका अमुक भाग ही लाये हैं; इसलिए प्रथम स्थानका अधिकारी सर्वस्वका दान देनेवाला भीमा है।'



भक्तिमार्गमें, संकीर्तनकी महिमा बढ़ानेवाले सन्तोंमें श्री चैतन्यदेव बहुत ही जाने-माने हैं। (ईस्वी सन् १४८५-१५३३) चौबीस वर्षकी वयमें संन्यासधर्म ग्रहण करनेके बाद उन्होंने प्रभुनामकी महिमाका प्रचार करनेके लिए भारतके अनेक प्रदेशोंमें भ्रमण किया। एक बार वे बंगालमें राढ (कलकत्ताके पश्चिममें) प्रदेशके एक छोटे गाँवमें आ पहुँचे। उन्हें पता चला कि एक ब्राह्मण विधवा वाई भूखके कारण किसी स्थानपर पड़ी है। संकीर्तन चालू होनेमें अभी एक-दो घण्टे बाकी होंगे वहाँ तो चैतन्यदेव स्वयं भिक्षापात्र लेकर गाँवमें सीधा लेने निकल पड़े। तीन-चार घरोंसे थोड़ा-थोड़ा लाकर इकट्ठा हुआ सीधा उन्होंने उस भूखी ब्राह्मणी वाईके समक्ष रखकर कहा, 'माताजी ! मैं तुम्हारा बालक हूँ, तुम्हारे लिए

भिक्षा लाया हूँ वह बनाओ और खाओ।'

ऐसे हृदयकी गहराईमेंसे निकले प्रेमपूर्ण वचन सुनकर उस ब्राह्मण बाईकी आँखोंमेंसे टपाटप आँसू बहने लगे। जब ब्राह्मणबाईको ज्ञात हुआ कि यह बालक तो प्रसिद्ध भक्तराज श्री चैतन्यदेव हैं तब उसके आनन्दका पार नहीं रहा।

सन्तोंके जीवनमें परोपकार, परदुःखनिवारकता और जगतके सभी जीवोंके प्रति आत्मीयताका व्यवहार सहजरूपसे गुंथ गये होते हैं।



४७

मंत्रीका स्पष्टवक्तापन

अपने राज्यमें अहिंसा धर्मका दृढ़तासे पालन करानेवाले महाराजा कुमारपालका नाम इतिहासमें प्रसिद्ध है।

उनके राज्यमें अनेक चतुर मंत्री और सुभट सेनापति थे। एक समय राजदरबारमें उन्होंने अपने एक अनुभवी और वृद्ध मंत्री श्री आलिंगको पूछा, 'मंत्रीजी, मैं गुणसम्पत्ति आदिमें जयसिंह-सिद्धराजसे हीन हूँ, समान हूँ कि अधिक हूँ?'

मंत्रीने कहा, 'महाराज ! जयसिंह-सिद्धराजमें तो अट्ठानवे गुण थे और दो ही दोष थे, जब कि आपमें तो दो ही गुण हैं और अट्ठानवे दोष हैं।'

राजाने जब अपने ही मंत्री द्वारा अपना दोषयुक्त जीवन जाना तब उन्होंने ऐसे दोषपूर्ण जीवनकी अपेक्षा मृत्युको पसंद करनेकी इच्छा व्यक्त की। मंत्री चतुर थे। उन्होंने तुरंत राजासे

कहा, 'महाराज ! सिद्धराजमें जो अट्ठानवे गुण थे वे उनके दो महान दुर्गुणोंमें बिलकुल छिप जाते हैं - समरांगणमें कायरता और स्त्रीलम्पटता। जबकि आपमें जो कृपणता-लोभीपन आदि दोष हैं वे सब आपके दो अति महान गुणोंमें कहीं छिप जाते हैं - समरांगणमें शूरवीरता और परस्त्रीमें सहोदरापनेकी उच्च भावना।

यह सुनकर राजा कुमारपाल स्वस्थ हुए और अनुभवी मंत्रीके स्पष्ट, परन्तु न्यायोचित अभिप्रायकी प्रशंसा की एवं अपनी भूल सुधारनेका दृढ़ संकल्प किया।

*

४८

'सुना पर गुना नहीं'

वर्तमानमें जो शिक्षा अपनेको मिलती है वह अपने जीवन-विकासमें कहीं तक सहायक है और व्यावहारिक जीवनकी अनेक समस्याओंके समाधानमें कितनी उपकारी हैं यह विचारणीय है। वर्तमान शिक्षाने अपने ऐसे प्रयोजनकी अधिकांशरूपमें सिद्धि नहीं की है। इसी बातको दर्शाते हुए शिक्षितोंके निम्नलिखित दो प्रसंग रसप्रद और बोधक हैं :

(१) एक, बी.ए. तक पढ़े हुए शिक्षकको आभूषण बनवानेके लिए सुनारके पास जाना पड़ा। सोनेका तोल करते समय दुअत्रीकी आवश्यकता हुई। सुनारके पास वह नहीं थी। सुनारने शिक्षक बन्धुसे कहा कि तुम्हारे पास दुअत्री है तो दो। शिक्षकके पास खुली दुअत्री नहीं थी इसलिए

उसने एक पैसे वाले आठ सिक्के दे दिये। सुनार तो हँस-हँसकर लोटपोट हो गया और एक ग्रेज्युएटका उसने मूल्यांकन कर लिया।

(२) एक समय एक पाठशालाके हेडमास्टरने अपने विद्यार्थियोंको ड्रिल सिखानेके लिए पासके गाँवकी पाठशालाके ड्रिल-मास्टरको बुलाया। उन्हें लेनेके लिए स्टेशनपर मोटर भेजी। कुछ दिनोंमें ड्रिल-शिक्षकका कार्य पूरा हुआ और उस शिक्षकको स्टेशन तक पहुँचानेके लिए राज्यके शिक्षा-विभागको पत्र लिखकर मोटर मँगायी। थोड़ी देरमें दूसरा पत्र लिखकर उस ड्रिल-मास्टरको पढ़वाया। जिसमें लिखा था कि 'मोटरके साथ ड्राइवरको भी भेजें, पहले पत्रमें मैं यह लिखना भूल गया हूँ।' ड्रिल-मास्टर पत्र पढ़कर खूब हँसे और कहा, साहब ! मोटर आयेगी तो अकेली तो नहीं आयेगी न !

पढ़नेके साथ-साथ गुनें तो जीवनमें ऐसा घोंटाला न हो, यही हमें ऐसे प्रसंगोंपरसे सीखना है।

*

संसारमें अनेक विदुषी, स्त्रियोंको कर्कश पति मिलता है और अनेक महापुरुषोंको कर्कशा पत्नी मिलती है, फिर भी विचारशील व्यक्ति अपनी समझदारीसे घर-संसारको स्वर्गसमान बना देता है। महान भक्त तुकारामकी पत्नी भी बहुत कर्कशस्वभाववाली थी।

एक दिन तुकाराम कुछ गन्ने लेकर घर आ रहे थे। मार्गमें गरीब आदमी और उनके छोटे बच्चे सामने मिले। उन्होंने दयाभावसे प्रेरित होकर गन्ने गरीबोंको बाँटने शुरु कर दिये। अन्तमें एक ही गन्ना तुकारामके पास बचा, जो उन्होंने घर जाकर पत्नीको दिया। पत्नीको पता चल गया कि तुकारामने रास्तेमें बहुत-से गन्ने गरीबोंको दे दिये हैं, इसलिए क्रोधमें आकर गन्ना तुकारामकी पीठमें मारा। गन्नेके दो टुकड़े हो गये। ज़रा-सा भी गुस्सा किये बिना तुकाराम हँसते मुँह बोले, 'वाह ! तू बहुत ही समझदार स्त्री है। तुझे मुझपर कितना अधिक प्रेम है ! एक गन्ने जैसी वस्तु भी तुझे अकेले खाना अच्छा नहीं लगा, इसीलिए अपने दोनोंके लिए भाग कर दिये। वाह, तेरी क्या समझदारी है !' ऐसे वचन सुनकर स्त्रीको बहुत ही पश्चात्ताप हुआ और उसने पतिसे क्षमा माँगी।

*

बारहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें उत्तर भारतमें सम्राट पृथ्वीराजका शासन प्रवर्तमान था।

एक बार किसी बड़े युद्धमें स्वयं सम्राट और उनके अनेक सामन्त एवं अंगरक्षक बहुत ही बुरी तरह घायल हो गये थे। सम्राट स्वयं लगभग बेसुध थे। रणक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त हुए अनेक सैनिकोंके शवोंको खानेके लिए गिद्ध आकाशमें

उड़ रहे थे। सम्राटको मरा हुआ जानकर एक गिद्ध उनकी ओर आया। सम्राटके अंगरक्षक संयमरायने उस गिद्धको देखा कि तुरंत उसने अपने शरीरपर तलवार मारकर मांसका बड़ा टुकड़ा उस गिद्धकी ओर फेंका। गिद्ध उसे खानेमें लग गया।

दूसरा सैन्य सम्राटकी सहायताके लिए आये उसके पूर्व संयमरायको अनेक बार अपने शरीरका मांस गिद्धोंको देना पड़ा। सद्भाग्यसे नयी मदद आ गयी और सम्राट तो बच गये परन्तु उनके अंगरक्षक संयमरायके शरीरका बहुत मांस गिद्धोंको खिलानेके काममें आ गया था इसलिए वे वीरगतिको प्राप्त हुए।

संयमरायका पार्थिव शरीर तो चला गया परन्तु अपने स्वामीके प्रति, जीवनके अन्तिम श्वास तक टक्कर लेनेवाले उस वीरकी उज्वल कीर्तिको कौन नष्ट कर सकता है ?

✽

जब नेपोलियन बोनापार्ट सम्राट बन गया उसके बाद एक समय वह अपनी प्रेयसीके साथ एक छोटे मार्गपरसे निकल रहा था। बाईको अपने उच्च कुलका, धनका और यौवनका अभिमान था।

वे लोग आगे चले, वहाँ एक सँकरा मार्ग आया। राजा किसी कारणसे कुछ कदम पीछे रह गये। इतनेमें एक गरीब मजदूर सिर पर बोझ उठाये सामनेसे आया। वह बाई तो पहलेकी भांति ही रोबसे चलती रही, जाने कि उसने

सामनेसे आनेवाले उस मजदूरको देखा ही न हो। मजदूरके सिरपर बड़ा गट्ठर था जिस कारण उसे खूब सँभलकर चलना पड़ता था।

पीछेसे नेपोलियनने यह देखा तो तुरन्त उसने शीघ्रतासे उस वार्डका हाथ खींचकर उसे मार्गके एक ओर कर दी और कहा, 'देखो, इस आदमीके सिरपर इतना सारा बोझ है। अपना कर्तव्य है कि उसे मार्ग देनेके लिए एक ओर खिसक जाना चाहिए, जिससे कि उसे कष्ट न हो और आकस्मिक घटनासे बचा जा सके।'

'बोझ'को सम्मान देनेसे श्रमका आदर होता है और श्रमका सम्मान करनेसे मानवमात्रका सम्मान होता है। इस बातका ध्यान, केवल श्रीमंताईमें पले हुए अभिमानी जीवोंको कहाँसे आ सकता है ?

※

५२

हम अच्छे बनें

बादशाह अकबर दरबार लगाकर बैठे थे। उन्होंने भीत पर एक रेखा खींची और सभासदोंसे कहा कि इस रेखाको काटे बिना छोटी कर दो। सब विचारमें पड़ गये कि ऐसा कैसे हो सकता है ?

चटपट उत्तर देनेमें निपुण बीरबलकी ओर सबकी दृष्टि गयी। बीरबल भीतके पास आये और बादशाहने खींची हुई रेखाके पासमें दूसरी उससे बड़ी एक रेखा खींच दी। सभासदोंको और बादशाहको उनका उत्तर मिल गया। बीरबल

द्वारा खींची गयी रेखाकी तुलनामें अब बादशाहकी रेखा छोटी लगती थी।

इस बातको जीवनमें लागू करें तो अपना जीवन उदात्त बन जाय। किसी भी व्यक्ति या संस्थाको नीचे गिरानेके लिए उसकी मर्यादा अथवा भूलें ढूँढनेकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु स्वयंको और संस्थाओंको अच्छे कामोंसे या गुणोंसे आगे बढ़ानेका प्रयत्न करना चाहिए। *

५३

व्यापारीकी प्रामाणिकता

गुजरातकी उत्तरदिशामें कच्छके प्रदेशमें मांडवी नामका बंदरगाह है। थोड़े दशक पूर्व उस बंदरगाहसे बड़े प्रमाणमें देश-विदेशके साथ व्यापार होता था और अनेक देशोंके जहाज यहाँ आकर खाली होते थे।

इस गाँवमें एक विश्वासपात्र व्यापारी रहता था। प्रामाणिकता ही उसके जीवनका मुद्रालेख था। इसीकारण, सारे प्रान्तमें उसकी साख थी।

एक बार जामनगरसे रेशमी कपड़ेकी गाँठें आईं, परन्तु किसी कारणवश उनकी रसीदें सेठजीके पास नहीं पहुँची कि जिससे माल छुड़ा सकें। ग्राहकोंके दबावमें सेठने मुनीमजीको बंदरगाहपर भेजा और माल छुड़ा लानेको कहा। सेठजीकी साखसे कस्टम अधिकारीने चुंगी लेकर माल छुड़वाकर मुनीमजीको सौंप दिया।

ग्राहकोंको माल पहुँचाकर सेठजीने रसीद देखी तो चुंगीकी

रकम बहुत कम लगी। सेठजीने मुनीमको बुलाकर पूछा तो मुनीमजीने कहा कि रेशमी कपड़ेपर चारगुनी चुंगी होनेसे मैंने, जहाजमें सूती कपड़ा आया है ऐसा कस्टम अधिकारीको बताया था जिससे अपनी चुंगी बच जाय।

सेठजी झटपट रसीद लेकर कस्टम-विभागमें गये और कस्टम-अधिकारीसे क्षमा माँगी एवं चुंगीकी चारगुनी रकम भर दी। घर आकर मुनीमजीसे कहा कि ऐसा अप्रामाणिक कार्य भविष्यमें कभी भी करेंगे तो मुझे अपनी पीढ़ीमेंसे तुरन्त कार्यमुक्त करना पड़ेगा।

सेठजीकी प्रामाणिकता देखकर मुनीमजी एकदम स्तब्ध रह गये। उधर कस्टम-अधिकारी भी मनमें उन्हें धन्यवाद देते रहे। ※

५४

शूरवीरताका सन्मान

वर्तमान मैसूर और आंध्रप्रदेशकी सीमापर बेल्लारी नामका नगर है।

लगभग ई. सन् १६६५में जब छत्रपति शिवाजी अपने राज्यका विस्तार कर रहे थे तब उन्होंने बेल्लारीके राज्यपर चढ़ाई कर दी। उस समय बेल्लारीमें कोई राजा नहीं था, परन्तु राज्यकी व्यवस्था मलवाई देसाई नामक एक शूरवीर विधवाबाई करती थीं। प्रबल मराठा सैन्यके सामने बेल्लारीका छोटा सैन्य कितनी टक्कर झेल सकता ? फिर भी युद्ध तो हुआ ही और अन्तमें मलवाईको बंदी बनाकर शिवाजी महाराजके सामने उपस्थित किया गया।

पराजयको प्राप्त होते हुए भी मलबाईकी छटा, प्रसन्नता और साहस - देखकर शिवाजीको आश्चर्य हुआ। मलबाईने स्पष्टरूपसे कह दिया कि तुम मुझे मृत्युदण्ड दे सकते हो परन्तु किसी भी प्रकारसे मेरा अपमान नहीं होना चाहिए।

शिवाजी शूरवीरताके पुजारी थे। उन्होंने मलबाईसे कहा, 'अपनी माता जीजाबाईके स्थानपर ही मैं तुम्हें मानूँगा। तुम्हारा राज्य स्वतन्त्र रहेगा। मराठा साम्राज्य तुम्हारे राज्यके साथ, मैं जीवित हूँ तवतक एक उत्तम मित्रराज्यके रूपमें व्यवहार करेगा।'

मलबाई, शिवाजीका विधान सुनकर गद्गद हो गयीं और एक सच्चे छत्रपतिके रूपमें उनकी प्रशंसा की। सभी सभासदोंने हर्षनाद किया : 'छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय।' तब शिवाजीने प्रतिघोष किया, 'माता मलबाईकी जय।' ❖

एक दिवस प्रसिद्ध गायक तानसेनके संगीतसे प्रसन्न होकर शहंशाह अकबरने उससे पूछा, 'इतना सुन्दर संगीत तुमने कहाँसे सीखा ?' तानसेनने उत्तर दिया, 'अपने गुरु हरिदासजीके पाससे।' अकबरके मनमें विचार आया कि हम तानसेनके गुरुके पास जाकर उनका संगीत सुनें। पश्चात् तानसेनको लेकर अकबर अपनी मंडली सहित हरिदासजीके निवासस्थान पर गये। हरिदास तो सूरदासजीकी तरह निरन्तर ईश्वरभक्तिमें निमग्न रहते थे। वे ईश्वर-भजनके अतिरिक्त और कुछ नहीं गाते थे। बादशाहने हरिदासजीसे कुछ संगीत सुनानेकी प्रार्थना

की। हरिदासजीने तो नित्यक्रमानुसार परमात्माका सुंदर भजन गाया। बादशाहको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। हरिदासजीका यथायोग्य सत्कार करके वे दरबारमें आये। एक दिन सभामें अकबरने तानसेनसे अपने गुरुद्वारा गाया हुआ भजन गानेको कहा। तानसेनने गाया तो सही, परन्तु बादशाहको उस दिन-जितना आनन्द नहीं आया। बादशाहने तानसेनसे पूछा, 'इस समय तूने जो भजन गाया वह उस दिन-जितना प्रिय नहीं लगा इसका क्या कारण है?' तानसेन बोला, 'मैं तो आपको प्रसन्न करनेके लिए गाता हूँ। मेरे गुरु आपको प्रसन्न करनेके लिए भजन नहीं गाते थे, परन्तु बादशाहके बादशाहको प्रसन्न करनेके लिए गाते थे। भजन तो वही है, फिर भी मेरे और उनके संगीतके बीच अन्तर डालनेवाला कारण एक ही है !'

बादशाह प्रसन्न हुए और गुरु हरिदासके समागममें अधिकसे अधिक आनेका प्रयास करने लगे। *:

एक समय गुजरातके महाराजा कुमारपालने निकटके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिए अपने चाहड नामक एक सेनापतिको भारी सेना लेकर भेजा। मार्गमें एक जगह बहुत-से गरीब भिखारियोंने उनके पास दानकी याचना की। सेनापतिने खजानचीको एक लाख मुद्राएँ देनेको कहा। 'राजाकी आज्ञा नहीं है' ऐसा कहकर खजानचीने धन देनेको मना करेनपर सेनापतिने जबरदस्ती धन लेकर उन याचकोंको

उदारतापूर्वक दान दिया।

चाहडने, स्वयं जिस राज्यको जीतने निकला था उस राज्यके किलेको घेर लिया और उसके शूरवीर सैनिकोंने देखते-देखते किला जीतकर उस राज्यमेंसे सात करोड़ रुपयेका सोना और ग्यारह हजार घोड़ोंकी वसूली की। यह सब लेकर वह पाटणके दरबारमें राजा समक्ष उपस्थित हुआ और सारा वास्तविक वृत्तान्त राजाको बताया।

तब राजाने कहा, 'तेरी दान देनेकी यह प्रकृति न गयी सो न गयी।'

राजाकी यह बात सुनकर निर्भीकतापूर्वक सेनापति चाहडने कहा, 'महाराज ! आप पितृपरम्परासे राजा नहीं हैं अतः आपमें स्वाभाविकरूपसे दानशीलताका गुण नहीं है, और इसीलिए आपका दान मर्यादित है। मुझे तो पितृपरम्परासे ही दानके संस्कार मिले हैं इसलिए मैं दानमें अधिक धन व्यय करता हूँ यह आपकी बात सत्य है।

गुणग्राहक राजा कुमारपालने सत्यका स्वीकार करते हुए मंत्रीको कहा कि 'यह तेरा दान ही तेरा रक्षामंत्र है, कारण कि जितना तू देता है उससे अनेक गुना तुझे मिल ही जाता है, तुझे धन्य है !'

✱

दूसरा विश्वयुद्ध पूरा होनेकी तैयारी थी। जापान द्वारा जीत लिये गये ब्रह्मदेशके अमुक भागको ब्रिटिश सेनाने भारतीय सैनिकोंकी

सहायतासे जीत लिया। जीतसे मदान्ध बने हुए सैनिक बहुत-सी बार उन्मत्त होकर नहीं करनेके काम करते हैं। एक गढ़वाली युवान सैनिक भी अपनी कामलिप्सा तृप्त करनेके अभिप्रायसे एक वृद्ध सैनिकके साथ एक गाँवमें निकला।

अँधेरेका समय था। एक छोटे-से घरमें देखा तो एक वृद्ध एवं दुर्बल आदमी और उसकी युवान पुत्री वहाँ थे। घरके द्वारके पास ही युवती बैठी थी। दूरसे ही इन सैनिकोंको आते देखकर वह सावधान हो गयी और जैसे ही वह सैनिक घरमें घुसनेका प्रयत्न करता है कि तुरन्त एक लम्बे हथियारवाला लोहेका तीक्ष्ण हथियार लेकर वह अपनी रक्षाके लिए तैयार हो गयी। युवतीका मिजाज देखकर वह सैनिक अन्दर जानेकी हिम्मत नहीं कर सका। उसने युवतीको दस रुपयेका नोट दिखाया तो भी युवतीने फिरसे उसे वही हथियार दिखा दिया।

‘अब क्या करना?’ इस विचारमें वह युवान था, तभी साथके वृद्ध सैनिकने उस युवान सैनिकको राइफल ताकने लिए कहा। उस युवानने युवतीके सामने राइफल दिखाकर उसे डरायी परन्तु उस निर्भय युवतीने फिरसे वही शस्त्र उसके सामने दिखाया। यौं लगभग दस मिनट तक धमकियोंका द्वन्द्वयुद्ध-सा चलता रहा परन्तु युवकको उसमें सफलता नहीं मिली।

‘इस युवतीको वशमें करनेके लिए अब क्या करना?’ ऐसा विचार दोनों सैनिक कर रहे थे, इतनेमें एक ज़हरी नागने आकर सैनिकको डस लिया और वहीं उसका मरण हो गया। वृद्ध सैनिक तो चकित हुआ और वहाँसे एकदम पलायन कर गया।

जो बहनें अपनी शील-रक्षाका दृढ़ संकल्प करती हैं उन्हें, अनेक कष्टों और प्रलोभनोंको सहन करते हुए भी अन्तमें ईश्वरीय सहायता अवश्य मिल जाती है, यह बात इस दृष्टान्तसे स्पष्ट फलीभूत होती है। *

५८

आदर्शदर्शी राजा

सम्राट अशोकने अपने जन्मदिन पर राज्यके सभी सूबेदारोंको बुलाकर आज्ञा दी कि आज मुझे, वर्षभरमें सबसे अच्छा काम करनेवाले सूबेदारको पुरस्कार देना है, इसलिए प्रत्येक सूबेदार अपना कार्यकलाप मुझे बताएँ। उत्तरके सूबेदारने कहा, 'मान्यवर, मैंने अपने प्रदेशकी आय तीनगुनी बढ़ा दी है।' दक्षिणके सूबेदार बोले, 'राज्यके कोषमें प्रतिवर्ष भेजा जाता रहा सोना मैंने इस वर्ष दूना कर दिया है।' पूर्वके सूबेदारने निवेदन किया, 'महाराज, पूर्वकी उपद्रवी प्रजाको मैंने कुचल दिया है, अब वह कभी-भी अपने सामने आँख उठाकर नहीं देख सकेगी।' पश्चिमके सूबेदारने वृत्तान्त दिया, 'मैंने प्रजासे लिये जानेवाले करमें बढ़ोतरी की है और राज्यकर्मचारियोंके वेतनमें कमी करके आयमें अच्छी वृद्धि कर दी है।' इन सबकी बात सुनकर मध्यप्रान्तका सूबेदार भयसे धरति हुए बोला, 'महाराज ! क्षमा करें। राज्यकी आयमें मैं इस वर्ष वृद्धि नहीं कर सका। उलटे, राज्यके कोषमें प्रतिवर्षकी अपेक्षा मैंने कम धन भेजा है, क्योंकि मैंने अपने प्रदेशमें आपकी प्रजाको शिक्षा देनेके लिए नयी पाठशालाएँ खोली

हैं। किसानोंके लिए कुआँ-बावड़ी बँधवाकर अनेक प्रकारकी सुविधाएँ कर दी हैं। सार्वजनिक धर्मशालाओं और औषधालयों आदिके पीछे भी इस वर्ष अधिक खर्च हुआ है।'

मध्यप्रान्तके सूबेदारका अपनी प्रजाके प्रति लगाव देखकर राजा प्रसन्न हुए और उन्हें वर्षभरके श्रेष्ठ कार्योंके लिए योग्य पुरस्कार दिया, एवं अन्य सूबेदारोंको प्रजाकी भलाईकी ओर ध्यान देनेका आदेश दिया। ※

५९

जीवरक्षाका दृढ़ संकल्प

लगभग साठ वर्ष पहलेकी यह बात है। भावनगरमें उस समय महाराजा भावसिंहजीका शासन था। भावनगरसे दूसरा ही स्टेशन खोडियार है जो माताजीके भक्तोंके लिए प्रसिद्ध तीर्थधाम है।

महाराजाके जन्मदिन चैत्र वदी पंचमीको वहाँ बड़ा मेला लगता था, जिसमें माताजीकी पूजा होती और भोग लगाकर प्रसाद वाँटा जाता।

पूजा-अनुष्ठानमें आचार्य जयराम पुरुषोत्तम और उनकी धर्मपत्नी कस्तूरवाई थे। जब उस वार्डको पता चला कि पूजा और प्रसादीकी सामग्री आ गयी है और उसमें एक हृष्टपुष्ट सिंगारा हुआ वकरा भी है जिसका भोग माताजीको लगाया जायेगा, तब उस वार्डका मन भयसे काँप उठा और हृदय धकधक करने लगा। उसने आग्रह किया कि वकरेका वध तो विलकुल नहीं होना चाहिए।

नियुक्त सेवकों, थानेदारों तथा अन्य बहुतोंने उस बाईको समझाया। 'महाराजा नाराज होंगे, हमारा कुछ चलनेवाला नहीं है' आदि युक्तिपूर्वक अनेक बातें कहीं। तब बाईने कहा 'जाओ, महाराजासे कहना कि एक ब्राह्मणकी लड़कीने यह काम होनेसे रोक दिया है।' वे जो सजा देंगे वह मुझे मान्य है।

आखिर अपनी बाजी नहीं चलती देखकर, बकरेके कानकी किनारीमेंसे ज़रासा रक्त लेकर माताजीको तिलकं किया और बकरेको छोड़ दिया। अन्य सब विधि यथावत् पूरी हुई। कसारका प्रसाद तैयार किया गया था वह सबने लिया। वही प्रसाद महाराजा भावसिंहजीको पहुँचाया गया और समस्त घटनाकी यथार्थ जानकारी उन्हें दी गयी। गुणग्राहक महाराजाने प्रसन्न होकर उस निडर और दृढ़ निश्चयवाली ब्राह्मण बाईको बड़ी भेंट दी, एवं राज-आज्ञासे पशुवधको बन्द कराया।

परम अहिंसाधर्मकी विजय हुई।

✱

अपने देशके उड़ीसा प्रान्तमें कटक नामका एक बड़ा नगर है। वहाँ सात्त्विक वृत्तिवाले देवेन्द्रनाथ मुकर्जी नामक एक सज्जन रहते थे। उनके घर एक दिन भोलानन्दगिरि नामके एक महात्मा पधारे। चार-पाँच विद्यार्थियोंने आकर उन्हें प्रणाम किया। स्वामीजीने कुशलता पूछकर आशीर्वाद दिये। विद्यार्थियोंने उठनेकी तैयारी की तब महात्माने कहा, 'वालको, मन्दिरमें अथवा साधु-संतोंके पास जब

जाओ तब कुछ देना चाहिए।' विद्यार्थियोंको लगा कि हम तो गरीब और पढ़नेवाले विद्यार्थी हैं, पैसे कैसे और कहाँसे लायें ? उनका मनोभाव समझकर महात्मा तुरन्त बोले, 'बालको ! मुझे अन्य किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। आज तुम इस प्रकारका संकल्प करो :

- (१) असत्य आरोप या कलंक लगाना नहीं।
- (२) दूसरेकी निन्दा-चर्चा करनी नहीं।
- (३) शर्त लगाना नहीं।
- (४) चारित्रभ्रष्ट होना पड़े ऐसा काम करना नहीं।'

विद्यार्थियोंने प्रसन्नता व्यक्त की और वे इसप्रकार करनेकी वचनरूपी दक्षिणा महात्माको देकर अपने छात्रावासकी ओर चल दिये।

इस सत्य घटनाका वर्णन करनेवाले डॉक्टर सतीशचन्द्र रॉय स्वयं भी इन विद्यार्थियोंमेंसे एक थे, जिन्होंने महात्माके समक्ष उपरोक्त बातोंका संकल्प किया था ।

※

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी अध्यात्मके अच्छे प्रचारक थे। एक समय वे लाहोरमें एक धर्मशालामें ठहरे थे।

प्रातःकालमें बहुत सबेरे उठकर वे भजनमें बैठे थे तब उन्हें स्वयंपर धिक्कारका भाव जाग्रत हुआ। वे विचारने लगे कि मैं सबको सत्यका और सत्कर्मका उपदेश देता हूँ परन्तु मैं स्वयं कहाँ उसका पालन करता हूँ ? क्या इसी प्रकार मेरा जीवन निष्फल व्यतीत होगा ? क्या मेरा जीवन विशुद्ध

और सात्त्विक नहीं बन पायेगा ?

ऐसे अनेक विचारोंकी उलझनमें उन्होंने, पासमें ही बहती रावी नदीमें कूदकर जीवनका अन्त कर देनेकी तैयारी की। वे नदीसे थोड़ी ही दूरीपर थे तभी ध्वनि आयी 'रुक जाओ, क्या करने जा रहे हो ? आत्महत्या क्या बड़ा पाप नहीं है ? शरीर-त्यागसे पापका त्याग हो जायेगा ? सूक्ष्म दृष्टिसे साधनामार्गका पुनः अवलोकन करके सत्संगका आश्रय करो। खेद किये बिना प्रभुकृपा पर विश्वास रखकर धैर्य धारण करो। देर-सबेरसे सफलता अवश्य मिलेगी।'

ऐसे निर्जन स्थानमें अपरिचित आवाज सुनकर पीछे देखा तो किसी महात्माने उनका हाथ पकड़ा और उन्हें वापस धर्मशालामें ले गये।

यही महात्मा थोड़े समयके बाद साधनाके उच्चतर शिखरपर बिराजमान हुए और ढाकामें साधना आश्रम स्थापित करके अनेकोंके मार्गदर्शक बने। *

भारतके अर्वाचीन इतिहासकारोंमें सर रमेशचन्द्र दत्तका नाम प्रसिद्ध है। उन्होंने अपने समयमें अनेक ग्रन्थोंकी रचना की।

एक समय वे महर्षि अरविन्दसे मिलने गये। श्री अरविन्दसे उन्होंने माँग की कि उनके पास स्वयंलिखित कोई ग्रन्थ हों तो उनकी प्रति दिखायें। श्री रमेशचन्द्र दत्तको उनके पाससे रामायण और महाभारतके अनुवादोंकी प्रतियाँ प्राप्त

हुई। ये अनुवाद उन्हें इतने सुंदर लगे कि तुरन्त उन्होंने श्री अरविन्दके पास जाकर कहा कि ये अनुवाद तो अवश्य छपाने चाहिए। मैंने भी रामायण और महाभारतके अनुवाद (बंगालीमें) किये हैं परन्तु आपके अनुवाद देखनेके बाद मुझे अपनी कृतियाँ देखकर लज्जा आती है।

श्री अरविन्दने कहा, 'महानुभाव ! ये अनुवाद मैंने छपानेके लिए तैयार नहीं किये हैं, निजी स्वाध्याय-साधनाके भागरूप किये हैं। और फिर, ऐसी अनेक कृतियाँ हैं जो सभी मेरे जीवनकालमें प्रकाशित भी नहीं हो सकेंगी। वैसा करनेकी मेरी विशेष इच्छा भी नहीं है।'

श्री अरविन्दकी बात सुनी और कीर्तिके प्रति उनकी उदासीनता देखकर सर रमेशचन्द्र दत्त आश्चर्यसहित नम्रीभूत हो गये। *

६३

स्वादका त्याग

महाराजा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञका आरम्भ किया तब उन्होंने श्रीकृष्णसे पूछा कि 'मेरा यज्ञ पूरा हुआ है ऐसा मैं कब समझूँ ?' श्रीकृष्णने उत्तर दिया : 'मेरा यह पांचजन्य शंख स्वयं वजे तब समझना कि यज्ञ पूरा हुआ।' यज्ञ तो पूरा हुआ परन्तु शंख नहीं बजा। तब युधिष्ठिरने पूछा कि शंख क्यों नहीं बजा ? श्रीकृष्ण बोले : 'नगरमें देखो, कोई भक्त भूखा होगा।' नगरमें तपास की तो एक भंगी आत्माराम अपने घर बैठा था। वह युधिष्ठिरके यहाँ नहीं आया था। जिसने चौदह भुवनके नाथकी शरण ली है ऐसे इस भंगीको

जीमने आनेकी परवाह नहीं थी। युधिष्ठिरने आदर सहित उस भंगीको बुलवाया। द्रौपदी द्वारा स्वयं बनाई गयी रसोई उसे परोसी गयी। भंगीने एक-एक कौर अलग करके ईश्वरको अर्पण किया और बादमें सब इकट्ठा मिलाकर वह खा गया। यह देखकर द्रौपदीको ग्लानि हुई। उसने मन ही मन विचारा : 'आखिर है तो भंगी न ! वह रसोईके स्वादको क्या समझे ?' इसपर शंख थोड़ा बजकर बन्द हो गया। तब पुनः पूछे जानेपर श्रीकृष्णने कहा : 'तुमने भक्तको आदरपूर्वक नहीं जिमाया। तुम्हारे मनमें भक्तकी ओर घृणाकी भावना पैदा हुई थी इसलिए परिणाम भी वैसा ही आया है।' निर्मल चित्तवाली द्रौपदी भंगीके पास गयीं, उससे क्षमा माँगी और इकट्ठा मिलाकर खानेका कारण पूछा, तब आत्माराम सन्तने कहा, 'अन्न है वह शरीरके पोषणके लिए है, इन्द्रियोंको उन्मत्त बनानेके लिए नहीं है। स्वादपूर्वक भोजन करनेसे जीभकी लोलुपता बढ़ती है, सभी इन्द्रियोंमें रसना-इन्द्रिय भयंकर है। स्वादका चसका, ध्यान और भक्तिमें बाधक है इसलिए मैंने उसका त्याग किया है।' ये वचन सुनकर द्रौपदी प्रसन्न हुई और उसे वंदन करने लगीं। पश्चात् मंगल चिह्नस्वरूप पांचजन्य शंख बज उठा !

✽

एक ग्रामीण पाठशालामें अध्यापकने विद्यार्थियोंको गृहकार्यके लिए कुछ गणितके प्रश्न दिये और दूसरे दिन हल कर

लानेको कहा।

एक प्रतिभाशाली विद्यार्थीको गणितके सभी प्रश्नोंका हल मिल गया परन्तु एक प्रश्न कठिन था जिसका हल नहीं मिला। उसे हल करनेके लिए उसने अपने मित्रकी सहायता ली और गणितका प्रश्न हल कर लिया। दूसरे दिन अध्यापकने गृहकार्यका निरीक्षण किया तो केवल इस एक विद्यार्थीके ही गणितके सभी हल सही निकले। अध्यापकने उसे खूब शावाशी दी और पुरस्कार देने लगे।

विद्यार्थी प्रसन्न होकर पुरस्कार लेनेके वदले नीचा मुँह करके रोने लगा।

अध्यापकने पूछा, 'क्यों भाई ! तू रोता क्यों है ?

विद्यार्थीने कहा, 'साहब, आप मुझे गणितके सभी हल सही कर लानेके लिए पुरस्कार देते हैं परन्तु मैं इस योग्य नहीं हूँ, क्योंकि गणितका एक हल मैंने अपने मित्रकी सहायतासे किया है।'

यह सुनकर अध्यापक और अन्य विद्यार्थी विस्मयसहित आनन्दित हुए। अध्यापकने उस विद्यार्थीसे कहा कि ऐसी सरलता और सत्यप्रियताके लिए मैं तुझे पुरस्कार तो देता ही हूँ, साथ ही आशीर्वाद भी देता हूँ कि जीवनमें तू ऐसी सत्यनिष्ठा रखेगा तो सचमुच तुझे सर्वत्र सफलता मिलेगी।

यह विद्यार्थी दूसरा कोई नहीं परन्तु श्री गोपालकृष्ण गोखले थे। शील, सदाचार और सौजन्यकी मूर्ति-समान इस महापुरुषने 'भारत सेवक समाज'की स्थापना की और जनताको स्वार्थ लोकसेवाका आदर्श दिया। *

एक बालकको, उसके माँ-बापने खेतका जतन करनेका काम सौंपा था। बालक तो खेतमें बैठकर ईश्वरस्मरण करता। एक समय वह खेतमें चारों ओर फिर रहा था तब उसे देखकर पक्षी उड़-जाने लगे। बालकने यह देखा तो उसे दुःख हुआ और मनमें विचारने लगा कि ‘ये पक्षी परमात्माके हैं और यह खेत भी परमात्माका ही है !’ ऐसा विचारते हुए उसके मुखमेंसे शब्द निकल पड़े कि हे पक्षियो ! मुझसे डरे-बिना तुम पेट भरकर खा लो, खा लो।

जानते हो यह बालक कौन था ? पंजाबके प्रसिद्ध सिक्ख गुरु नानक साहब।

जब वे बड़े हुए तब उनके पिताने उन्हें अनाजकी दुकानपर बैठाया। एक बार कुछ साधु इस दुकानपर आये। प्रत्येकको अनाज देते-देते वे अनुक्रमसे एक, दो, तीन...बारा, तेरा, इसप्रकार बोले। ‘तेरा’ शब्द आते ही ‘तेरा’ अर्थात् ‘हे भगवान तेरा’ ऐसा अर्थ हृदयमें स्फुरायमान हुआ, और वह मन-ही-मन विचारने लगे कि, हे ईश्वर ! इस जगतमें सब ‘तेरा’ ही है। दुनियाकी किसी भी वस्तुपर मेरा अधिकार नहीं है।

हमें भी सभी वस्तुओंपरसे ‘मेरापन’का मोह छोड़कर उनपर ईश्वरका अधिकार स्थापित करना चाहिए।



एक साधक अपने जीवनमें विविध सदगुणोंका विकास करनेमें प्रयत्नशील था, उसमें उसने 'क्षमा' गुणकी साधना तीन-चार मास तक चालू रखी।

इस अवधिके अन्तमें वह एक महापुरुषके पास गया और उनसे कहा कि, 'मेरी क्षमाकी साधना भली प्रकार हो गयी है।'

महापुरुषने कहा, 'तुझे इसका पता कैसे चला ?' साधकने उत्तर दिया, 'साहब, आप मुझे कितनी भी गालियाँ देकर मेरा अपमान कर देखें, मुझे क्रोध नहीं आयेगा।'

महापुरुषने कहा, 'भाई, इसका पता तो किसी अन्य प्रसंगपर चलेगा कि क्षमाकी कैसी साधना हुई है। इस समय केवल इसी कारणसे मैं अनेक अपशब्द बोलकर अपनी जीभकी पवित्रता क्यों बिगाड़ूँ ?'

ये महापुरुष अन्य कोई नहीं अपितु बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके प्रणेता, अर्वाचीन भारतके एक महान शिल्पी, महामना पण्डित श्री मदनमोहन मालवीय थे। ※

एक सुदृढ़ युवान-भिखारी एक बड़े आदमीके पास जाकर कहने लगा, 'साहब, मुझ गरीबपर दया करके कुछ दो।'

साहबने पूछा, 'भाई, तेरे पास क्या क्या है ?'

भिखारीके पास दो पत्तीली और एक गुदड़ी थी सो

दिखाकर उसने कहा, 'मेरे पास तो इतना ही है।'

साहबने कहा, 'मैं तेरी सहायता कर सकता हूँ परन्तु मेरे कहे अनुसार तुझे चलना पड़ेगा।' भिखारीने स्वीकार किया। अब बाजारमें जाकर दोनोंने वे दो पत्तिलियाँ बेच दीं और जो पैसे मिले उनमेंसे एक कुहाड़ी और थोड़ा आटा खरीदा।

साहबने भिखारीसे कहा, 'यह आटा आजकी रोटीके लिए काम आयेगा और कलसे पासके जंगलमें जाकर लकड़ी काट लाना और बेचकर अपना निर्वाह करना।'

भिखारीने दूसरे दिनसे प्रतिदिन उसी प्रकार करना चालू कर दिया। अल्प समयमें तो वह अच्छी तरह अपने पैरोंपर खड़ा हो गया और उसकी भीख मांगनेकी टेव भी सदाके लिए निकल गयी।

इसप्रकार मेहनतकी रोटी खानेकी प्रेरणा देनेवाले पुरुष थे महात्मा हज़रत मोहम्मद पैगम्बर साहब।

और यौं, एक महात्मा पुरुषकी सलाह उसके लिए महान वरदान बन गयी। *

उत्तर प्रदेशमें कुछ वर्षों पहले हुई यह घटना है।

एक गरीब कुटुम्बका एकमात्र पुत्र बहुत बीमार हो गया। कुटुम्बकी परिस्थितिके कारण डॉक्टरको निदानके लिए घरपर बुलानेमें विलम्ब हुआ, परन्तु अन्तमें डॉक्टरको बुलाना अवश्य पड़ा। नगरके प्रसिद्ध बालचिकित्सक डॉ. गुप्ता साहब

शीघ्रता करके आये तो सही, किन्तु बालकके पास पहुँचनेके दो-चार मिनट पूर्व ही बालककी आत्मा चली गयी थी। माँ, हृदयद्रावक करुण कल्पान्त कर रही थी।

यह स्थिति देखकर डॉक्टर वापस जाने लगे, बालकका पिता पड़ौसीके यहाँसे पच्चीस रुपये ले आया और डॉक्टरकी फीस देने लगा। डॉक्टरका हृदय द्रवित हो उठा। भीषण गरीबी, एकमात्र पुत्रके शवके सामने कल्पान्त करती हुई पत्नी, फिर भी स्वस्थतापूर्वक कर्तव्यपालनका उच्च आदर्श ! डॉक्टर मनसे धन्यवाद देकर फीसको अस्वीकार करते हुए एकदम घरसे बाहर निकल गये और जिस रिक्षामें शीघ्रतासे आये थे उसीमें बैठकर दवाखानेकी ओर रवाना हो गये।

दवाखानेपर पहुँचकर तीन रुपये रिक्षावालेको दिये। रिक्षावालेने कहा साहब ! आपने पच्चीस नहीं लिये तो मैं तीन क्यों न जाने दूँ ? डॉक्टरने कहा भाई ! तेरा काम और प्रकारका है, अपना किराया ले ले।

रिक्षावालेने किराया लिये बिना रिक्षा हाँक दी।

इस ओर, डॉक्टरने जो पच्चीस रुपये नहीं लिये थे वे वापस देनेके लिए बालकका पिता पड़ौसीके यहाँ गया और कहा, साहब, डॉक्टरने फीस नहीं ली इसलिए आपसे उधार लिये हुए पैसे वापस ले लीजिए।

पड़ौसीने कहा, मैंने तो तुम्हें पैसे दे दिये, अब वे तुम्हारे ही हैं, बालककी उत्तरक्रियामें उसका उपयोग हो सकेगा। बालकके पिताने बहुत कहा परन्तु पड़ौसीने पैसे वापस नहीं लिये और कर्तव्यकी दृष्टिसे उनके घर जाकर कामकाजमें सहयोग देने लगे।

देखो ! मानवताकी उच्च भावनाका पालन और उसमेंसे प्राप्त होती हुई प्रेरणाओंकी परम्परा !! *

६९

सत्यका आचरण

एक समय एक विद्वान-पुरुष अपने गाँव मोरेना (मध्यप्रदेश)से बम्बईकी ओर जा रहे थे। सब कुटुम्बीजन भी साथमें थे।

बातचीत करते हुए उनकी धर्मपत्नीने कहा कि आज तो छोटे पुत्रकी वर्षगांठ है, तीन वर्ष पूरे होकर आज उसे चौथा वर्ष लगा।

यह बात सुनकर विद्वान-पुरुष कुछ विचारमें पड़ गये, परन्तु इतनेमें तो बम्बईका स्टेशन आ गया और गाड़ी रुक गयी। 'मैं तुम्हें बाहर टिकट-खिड़की पर मिलता हूँ, तुम व्यवस्थितरूपसे सब सामान उतारकर बाहर निकलकर वहाँ आओ।'

कुटुम्बीजनोंको आश्चर्य हुआ। कुछ घबराये, किन्तु तबतकमें तो पंडितजी चल निकले थे।

टिकट-खिड़कीपर जाकर वे स्टेशन-मास्टरसे मिले। 'आज ही मेरा पुत्र पूरे तीन वर्षका होकर चौथेमें लगा है, पर मैं मोरेनासे निकला तब मुझे इस बातका ध्यान नहीं रहा, कृपया मुझे मेरे पुत्रकी आधी टिकट मोरेनासे बम्बईकी बना दीजिए।'

यह सुनकर स्टेशन-मास्टरको बड़ी प्रसन्नता हुई और मन-ही-मन उन्हें धन्यवाद देते हुए टिकट बना दी।

इतनेमें तो सभी कुटुम्बीजन सामान लेकर टिकट-खिड़कीके पास आ पहुँचे थे। बातकी यथार्थता जानकर सबको संतोष हुआ।

देखो ! धर्मात्मा विद्वानकी सत्यनिष्ठा ! कहाँ आजके पोथा-पण्डित और कहाँ ये सच्चे विद्वान !!

ये विद्वान और कोई नहीं परन्तु वर्तमान शताब्दीके आरम्भमें हुए जैनसमाजके महापण्डित श्रीमान् गोपालदासजी बरैया।

*

गत शताब्दीमें हुए अपने देशके राष्ट्रीयस्तरके एक नेताकी यह बात है। वे बड़ी अवस्था तक खूब स्फूर्तिवाले रहे और प्रत्येक कार्य बहुत सँभालकर प्रसन्नतापूर्वक करते थे। यह देख कर कितने ही युवानोंने उनसे कहा 'आप इस वयमें भी इतने सुंदर ढंगसे काम कर सकते हैं, इसपरसे हमें लगता है कि आपने शरीरस्वास्थ्य-रक्षाकी कोई विशेष युक्ति अपनायी है। क्या आप हमें वह युक्ति नहीं बतायेंगे ?'

दादाजी बोले, 'भाइयो ! यह उपाय बिलकुल सीधा-सादा है। मेरे दीर्घायुष्य और स्फूर्तिका रहस्य यह है कि मैं कभी मांस नहीं खाता, शराब नहीं पीता, तम्बाकू-सिगरेटका व्यसन नहीं रखता तथा भोजनमें चटपटी चटनी या अचार आदि नहीं लेता एवं तमोगुणको प्रेरित करनेवाली संगतिमें नहीं पड़ता।'

यह सुनकर युवान स्तब्ध रह गये। मन-ही-मन दादाजीकी प्रशंसा करने लगे और अनेक विचारशील युवकोंने वैसा ही जीवन जीनेका निश्चय किया।

ये महापुरुष थे भारतमें 'दादा'के नामसे प्रसिद्ध श्री दादाभाई नवरोजी। उपरोक्त प्रसंग, उनके बम्बईमें मनाये गये ८६वें जन्मजयन्ती-समारोहके अवसरका है। *

७१

संसारसुख और पुण्य

राजा सिद्धराज जयसिंह अपने शयनखण्डमें सो रहे थे और दो सेवक उनके पैर दबा रहे थे। राजाको निद्राधीन जानकर पहले सेवकने कहा, 'अपने राजाकी उदारता, उत्तम प्रजावात्सल्य, विद्वानों-कलाकारोंका सम्मान आदि राजोचित अनेक गुण वास्तवमें प्रशंसनीय हैं।' दूसरे सेवकने कहा, 'उनके सैन्यकी शक्ति, कठोर राज्यपालन और चतुराई द्वारा ही वे विशाल राज्यके स्वामी बने हैं।' इसप्रकार दोनोंने राजाकी प्रशंसा की इस बातका राजाको ध्यान था।

राजाके कार्योंकी प्रशंसा करनेवाले दूसरे सेवकको अलगसे बुलाकर, उसे कुछ भी कहे बिना राजाने एक लेख दिया और वह लेख महामंत्री सान्तूको पहुँचानेकी आज्ञा दी।

यह सेवक राज्यका लेख लेकर राजप्रासादकी सीढ़ियाँ उतर रहा था इतनेमें ही उसका पैर फिसला और नीचे गिरनेसे उसके पैरोंमें भारी चोट आयी कि जिससे वह चल नहीं सका।

इस ओर तभी, उसका साथी सेवक वहाँ आ पहुँचा और उसने पूछा, 'क्यों भाई, क्या हुआ?' सेवकने कहा, मेरे पैरमें चोट लगी है, तो महाराजका यह संदेश तुम

महामंत्रीतक पहुँचा दो। साथी-सेवक वह संदेश लेकर महामंत्रीके पास गया। उसमें लिखा था : 'आनेवाले व्यक्तिको सौ सिपाहियोंका सरदार बना देना।'

कुछ दिनों बाद राजाको जब इस बातका पता चला तो उन्हें भी लगा कि जिसे दिया उसे नहीं मिला और जिसके भाग्यमें था उसे ही मिला।

पुण्यके उदयको कौन बदल सकता है ! *

भावनगरमें इस समय जो तख्तेश्वरका मन्दिर है, इस मन्दिरका निर्माण करानेवाले भावनगरके राजा तख्तासिंहके जीवनकी यह घटना है। वे परोपकार, न्याय, दान, दया और प्रजावात्सल्य आदि गुणोंसे अपने राज्यकी प्रजामें ही नहीं परन्तु समस्त पश्चिम भारतमें एक महान लोकप्रिय राजाके रूपमें प्रसिद्ध थे।

दशहरेके दिन भावनगरमें *शमीपूजनके लिए राज्यकी ओरसे एक बड़ी सवारी निकलती थी, जिसमें बेन्दबाजे, घुड़सवार, बग्घियाँ, अंगरक्षक, हाथी और हज़ारों लोग जुड़ते।

एक बार ऐसी ही सवारी नगरसे निकलकर भील वाड़े — बहेलिया-बाड़ेके रास्तेसे ग्राम-बाहरके मन्दिरकी ओर जा रही थी। भील-बाड़ेके पास एक कैथका वृक्ष था। किसी छोटे बालकने कैथ गिरानेके हेतुसे वृक्षपर पत्थर फेंका, परन्तु वह

* शमी नामक एक वृक्षकी पूजा

पत्थर महाराजाके सिरमें लगनेसे बड़ा गुंबा हो गया। दीवान तो क्रोधावेशमें आये और आज्ञा की कि 'इस झोंपड़ीमें जो भी रहता हो उसे राजसभामें उपस्थित किया जाय।'

इस ओर, राजाने धीरजपूर्वक कार्यक्रम आगे बढ़ानेको कहा। शमीपूजनका काम पूर्ण होनेपर सभी जगह प्रसाद बाँटा गया और लोग अपने-अपने घर गये।

दूसरे दिन भीलके उस छोटे बालकको राजदरबारमें उपस्थित किया गया। उसकी माँ भी साथमें थी। वह काँपती-काँपती बोली, 'अन्नदाता ! मेरे पुत्रने तो कैथ गिरानेके लिए पत्थर फेंका था, कारण कि हम गरीबको और कुछ नहीं तो रोटके साथ कैथ हो तो भी पेट भर जाता है और दिन निकल जाता है !'

राजाने दीवानसे पूछा, 'दीवानजी, बालककी माताकी बात तो सच लगती है, अब रही दण्डकी बात। यदि वृक्षको पत्थर लगनेसे इस गरीब बालकको कैथ मिल सकता है तो मुझे पत्थर लगनेसे इस बालकको क्या मिलना चाहिए ? अधिक या कम ?' इसप्रकार महाराजाने दीवान और राजसभासदोंके सामने अपनी बात प्रस्तुत की।

यह बात सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये। महाराजाको सभामेंसे कोई उत्तर नहीं मिला, तब उन्होंने उस बालकसे कहा, 'भाई, तुझसे स्वयं लिये जाँये उतने रोकड़ा रुपये राजभण्डारमेंसे ले जा।'

भीलक वह बालक एवं उसकी माता अत्यन्त प्रसन्न हुए और 'दण्ड' लेकर अपने घर गये ।

✱

विविध क्षेत्रोंमें अनेक उच्च कोटिके महापुरुषोंको जन्म देनेका महाभाग्य बंगालको प्राप्त हुआ है, उसी बंगाल प्रान्तकी यह बात है।

कलकत्ताके हाईकोर्टमें एक न्यायाधीश थे। प्रामाणिकता, महान तर्कशक्ति और तीव्र बुद्धिधारी होनेसे उनके मित्र उन्हें विलायत जानेकी वारंवार प्रेरणा करते। उनकी स्वयं भी जानेकी इच्छा थी, परन्तु माताने परदेश जानेकी बात स्वीकार नहीं की इसलिए उन्होंने अपना विचार बन्द रखा।

इन दिनों भारतके गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन थे। किसी कारणसे वे कलकत्ता आये। हाईकोर्टके न्यायाधीश होनेसे दोनोंको मिलनेका प्रसंग आया। परस्परकी बातचीतमें लॉर्ड कर्जनने भी उन्हें विलायत जानेकी प्रेरणा की, तब न्यायाधीशने कहा, 'मेरी माताकी इच्छा नहीं है इसलिए मैं नही जाता।'

लॉर्ड कर्जनने कठोरतापूर्वक कहा, 'जाओ अपनी मातासे कहना कि भारतके गवर्नर जनरलने तुम्हें विलायत जानेकी आज्ञा दी है।'

तुरन्त ही न्यायाधीश महोदयने उत्तर दिया, 'साहब, इस दुनियामें मेरे लिए सबसे पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण आज्ञा मेरी माताकी है। गवर्नर जनरल या इससे भी ऊँची पदवीके अधिकारीकी आज्ञा मेरे निजी जीवनमें मेरी माताकी आज्ञासे नीची है।'

न्यायाधीशका, मातृभक्ति-दर्शक ऐसा उत्तर सुनकर गवर्नर

जनरल स्तब्ध हो गये।

ये न्यायाधीश महोदय थे बंगाल विश्वविद्यालयके वाइस-चान्सलर श्रीयुत आशुतोष मुकर्जी। *

७४

सन्त-वचनका प्रभाव

शाकम्भरी नगरीमें धनाशाह नामक श्रावक रहते थे। नाम धनाशाह परन्तु धनका तो नामनिशान नहीं। उनकी स्त्री चरखा कातती, धागे बनाती और धनाशाह उसका कपड़ा बनवाकर बेचता। इसप्रकार उनका निर्वाह होता था। एक बार धनाशाहने अपने लिए ही सूत कतवाकर उसका एक *पिछौरा बुनवाया कि जिससे सर्दीमें ओढ़नेके काम आवे।

एक दिन शाकम्भरी नगरीमें महाराजा कुमारपालके गुरु श्री हेमचन्द्राचार्य पधारे। उनके मन तो श्रीमन्त और रंक सब समान थे। ऐसे महान आचार्यको अपने यहाँ पधारे देखकर धनाशाहको अत्यन्त उल्लास-भाव आया, इसलिए उसने उन्हें योग्य आहार दिया और वह पिछौरा भी भिक्षामें दे दिया। श्री हेमचन्द्राचार्यने उसका स्वीकार किया।

कुछ दिनोंमें श्री हेमचन्द्राचार्य पाटण पधारे। वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। स्वागत-समारोहमें महाराजा स्वयं भी सम्मिलित थे। श्री हेमचन्द्राचार्यका पिछौरा देखकर राजाने कहा, 'भगवन् ! आप तो मेरे गुरु गिने जाते हैं। आप ऐसे मोटे पिछौरै-जैसे कपड़े पहनें यह देखकर मुझे लज्जा आती है।' हेमचन्द्राचार्यने उत्तर दिया, 'तुम

● मोटी पछेड़ी

राजा हो किन्तु तुम्हारे ही सहधर्मी निर्धन अवस्थामें रहते हैं और जैसे-तैसे निर्वाह करते हैं इसमें तुम्हें लज्जा नहीं आती ? हम मुनियोंको क्या ? हमको तो अल्प मूल्यवान और जीर्ण वस्त्र ही शोभते हैं।'

इस उपदेशका ऐसा प्रभाव हुआ कि कुमारपालने सहधर्मी-वत्सलताके पीछे प्रतिवर्ष एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ खर्चनेका निर्णय किया और इसप्रकार चौदह वर्षतक चौदह करोड़ स्वर्णमुद्राओंका सद्व्यय किया। इसी सहधर्मीवत्सलताके कारण कुमारपालको इतिहासमें अग्रिम स्थान प्राप्त हुआ।

उपदेशकी अपेक्षा आचरणका असर जल्दी होता है। *

७५

नौकरके साथ उदारताका व्यवहार

बंगालके कृष्णनगर नामक राज्यमें श्री ताराकान्त रॉय किसी ऊँचे पदपर नियुक्त थे। बहुत वर्षोंतक राजमहलके ही एक भागमें उनके निवासकी व्यवस्था थी।

एक समय सर्दिके दिनोंमें घर आते हुए उन्हें देर हो गयी। आकर देखा तो उनका एक पुराना और विश्वासपात्र नौकर उनके पलंगपर पैरोंकी ओर सो गया था। उसे उठाये बिना अपनी एक चादर जमीनपर बिछाकर वे सो गये।

प्रभातमें जल्दी राजाको कोई शुभ समाचार मिले थे अतः उसी आनन्दमें राजा स्वयं ही वे समाचार देनेके लिए श्री ताराकान्तके शयनखण्डमें गये और देखते ही आश्चर्यको प्राप्त हुए। उन्होने श्री ताराकान्तसे पूछा कि 'क्यों, आप नीचे

सोये है और नौकर पलंगपर सोया है ?' श्री ताराकान्तजीने रातको अपने देरसे आनेकी और उस समय थकानके कारण नौकरके पलंगपर सो जानेकी बात कही। नौकरकी निद्रा और आरामका भंग न हो इसी हेतुसे स्वयंने नीचे सो जानेका विचार किया था।

सारी बात सुनकर, श्री ताराकान्तके मनमें नौकरोंके प्रति इतनी भारी सहृदयता है यह जब राजाको ज्ञात हुआ तब उनके आनन्द और आश्चर्यका पार नहीं रहा। *

७६

सोनेके सिक्कोंकी अस्वीकृति

सन्त मथुरदासजी गंगाके किनारे अपनी कुटीरमें भगवद्भक्तिमें लीन रहते थे।

एक दिन एक बड़ा सिन्धी व्यापारी उनके पास आया और सोनेके सिक्कोंकी एक थैली उनके समक्ष भेंटस्वरूप रखकर कहा, 'प्रभु ! मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मैं सदा सुखी रहूँ।'

सन्तने कहा, 'भाई ! तू पहले अपनी यह थैली वापस ले ले फिर बात कसै।' किन्तु वह व्यापारी तो माना ही नहीं। सन्तने कहा, 'मेरी एक बातका उत्तर दे : तेरी पुत्रीका लग्नप्रसंग हो और बरातको भोजनके लिए बिठानेकी तैयारी हो, ऐसे समयपर जो कोई तेरे रसोईघरमें जाकर तैयार भोजनमें धूल डाल दे तो तू क्या करे ?'

'महाराज ! तब तो मैं डण्डे लगाकर उसके मूर्खतापूर्ण कार्यकी पूरी सजा दूँ।'

सन्तने कहा, 'भाई ! हम सन्त-लोग भी खूब प्रयत्नपूर्वक अपने प्रभुको बैठानेके लिए हमारा चित्त स्वच्छ करते हैं। भारी साधनासे स्वच्छ किये हुए चित्तको मलीन करनेके लिए कोई ऐसे रुपये-पैसे दे जाय तो हमें वह कैसे अच्छा लगेगा ? अब तू ही बता कि तुझे यह अपनी पैसोंकी थैली वापस ले लेनी चाहिए कि नहीं ?'

निस्पृही महात्माकी तर्कपूर्ण युक्तिसे प्रभावित उस व्यापारीने सन्तकी आज्ञा मान ली। सन्तने उस सज्जनको धर्मलाभके लिए आशीर्वाद दिया और अपनी सम्पत्तिका दान, परमार्थके किसी योग्य कार्यके लिए करनेको कहा। *

७७

अहिंसक सिंह !

सत्रहवीं शताब्दीकी यह बात है।

उस समय मुलतानमें नवाब मुजफ्फरखानका शासन था। मंत्री उदयरामजी जैन उनके विशेष विश्वासपात्र राजदरबारी थे।

एक बार नवाबको एक नवजात सिंहशिशु भेंटस्वरूप प्राप्त हुआ। नवाबने उदयरामजीसे कहा, 'सेठ साहब आप तो पूर्ण अहिंसक हैं, लीजिए इस सिंहके बच्चेको; यदि आप इसे भी अहिंसक बना दें तो आपको पूरा अहिंसक समझूँ।'

उदयरामजी तो बच्चेको अपने घर ले आये और उसे दूधके साथ धीरे-धीरे अन्नाहारकी भी आदत डालने लगे।

इसप्रकार समय बीतते सिंहका बच्चा तीन वर्षका हुआ तब उदयरामजीने उस बच्चेको नवाबको सौंप दिया और कहा,

‘लीजिए नवाब साहब, यह आपका सिंह अब अहिंसक हो गया है।’

नवाबने परीक्षा करनेके लिए उसे मांसका आहार दिया, परन्तु सिंहने मुँह फेर लिया ।

अच्छी शिक्षा और अभ्याससे यदि हिंसक पशु भी उत्तम संस्कार प्राप्त कर सकता है तो मनुष्य कितनी ऊँची पदवी पा सकता है यह हम इस वास्तविकतापरसे समझ सकते हैं !

※

७८

वचनका पालन

बादशाह अकबरके समयका यह सत्य वृत्तान्त है।

महाराणा प्रतापने मातृभूमि चित्तौड़की स्वन्त्रताके लिए राजमहल छोड़कर अरावलीके पर्वतमें वास किया था। उनके अधिकांश सैनिक खप चुके थे, थोड़े जो बाकी थे उनमें एक था सरदार रघुपतिसिंह।

एक दिन उसे समाचार मिले कि उसका एकमात्र पुत्र बहुत ही बीमार है। महाराणाकी अनुमति लेकर वह अपने पुत्रसे मिलने निकल पड़ा। जहाँ चित्तौड़की सीमापर आया वहाँ बादशाहके पहरेदारने रोककर उसका नाम पूछा, उसने अपना नाम बताया। पहरेदार तो अत्यन्त प्रसन्न हुआ कि अच्छा है घर बैठे ही शिकार हाथमें आ गया। उसे कैद करके वह बादशाहके पास ले जानेको तैयार हुआ तब रघुपतिसिंहने कहा, ‘भाई, मेरा पुत्र बहुत बीमार है, मुझे उससे मिलना है और दवाका प्रबन्ध करना है। मैं चौबीस

घण्टोंमें वह प्रबन्ध करके वापस लौटूँगा।' पहले तो पहरेदार माना नहीं परन्तु जब विचारा कि 'जिसने अपना नाम सही बताया है वह अवश्य वापस आयेगा।' ऐसा सोचकर उसने रघुपतिसिंहको जानेकी अनुमति दी।

इस ओर रघुपतिसिंहने दवा आदिका पूरा प्रबन्ध करके दूसरे दिन जानेकी तैयारी की तब पत्नीने उसे रोका, किन्तु उसे समझाकर वह तो चल निकला।

रघुपतिसिंहको आया हुआ देखकर पहरेदारने पूछा, 'तुझे मौतका डर नहीं लगता?' रघुपतिसिंहने कहा, 'चाहे कुछ भी हो परन्तु दिया हुआ वचन पालना धर्म है। मौतकी अपेक्षा मैं विश्वासघातसे अधिक डरता हूँ।'

यह सुनकर पहरेदार चकित हुआ। इस वीर, दृढ़ संकल्पी और देशभक्तको देखकर, उसे मुक्त करते हुए वह बोला, 'धन्य है तुम्हारे जैसे दृढ़ संकल्पी और सत्यप्रिय पुरुषको। मैं भी तुम्हारे जैसा बननेका प्रयत्न करूँगा। *'

ईस्वी सन् १९१२के अरसेमें जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीकाके जोहानिसबर्गमें रहकर भारतीय समाज-सम्बन्धी व्यवस्थाका कामकाज करते थे उस समयकी यह बात है।

बात ऐसी थी कि डरबनमें कस्तूरबा अत्यन्त गम्भीर बीमारीमें एक डॉक्टर-मित्रके यहाँ रहकर उपचार कराती थीं। एक दिन डॉक्टरने गांधीजीको तार करके कहा, 'आप तुरन्त

डरबन आ जाओ और अपनी पत्नीको जहाँ ले जाना हो वहाँ ले जाओ !'

ऐसा क्या हुआ था ?

हुआ यों कि डॉक्टरने कस्तूरबासे कहा था कि जीवित रहना हो तो तुम्हें दवाके रूपमें मांसाहार करना ही पड़ेगा। कस्तूरबाने इस बातसे साफ इन्कार करके कह दिया था कि मरण हो तो भले, परन्तु मांसाहार तो नहीं किया जा सकता। इसी कारणसे डॉक्टरने तार करके गांधीजीको डरबन बुलाया।

गांधीजी डरबन पहुँचे और डॉक्टर-मित्रसे कह दिया, 'यह मरणको प्राप्त हो तो भले, परन्तु इसकी इच्छाके विरुद्ध मांसाहार नहीं दिया जा सकता !'

'तो तुम्हारा तत्त्वज्ञान मेरे घर नहीं चलेगा, यदि ऐसा ही है तो अपनी पत्नीको ले जाओ।'

'कब ?'

'इसी समय, क्योंकि मैं, डॉक्टर होते हुए भी रोगीकी मिथ्या हठ स्वीकारकर उसे अपने घरमें नहीं मरने दूँगा।'

गांधीजीने अपने पुत्रके सामने कस्तूरबासे पूछा और उन्होंने उत्तर दिया, 'तो मुझे शीघ्र यहाँसे ले जाओ। मनुष्यदेह वारंवार नहीं मिलती। तुम्हारी गोदमें भले मर जाऊँ परन्तु मुझसे यह देह अपवित्र नहीं होने दी जायेगी।

वाह रे कस्तूरबा तुम्हारी दृढ़ता ! संस्कार इसीका नाम है !

वहाँसे निकलकर गांधीजी और कस्तूरबा द्रान्सवालकी राजधानीसे इक्कीस मील दूर 'टॉल्सटोय फार्म' में आकर रहे थे। कस्तूरबा तो अभी बीमार ही थीं। गाँधीजीने कस्तूरबाके लिए अनेक उपचार चालू किये किन्तु वे सब व्यर्थ सिद्ध

हुए। अब गांधीजीने नया उपचार अजमानेको कस्तूरबासे कहा, 'तुम्हें रक्तस्राव अटकानेके लिए दलहन और नमक छोड़ना पड़ेगा।'

'कबतक?'

'स्वस्थ होओ तबतक, अथवा सदाके लिए।'

'यह मुझसे नहीं होगा, ऐसा यदि मैं आपसे कहूँ तो आप भी न छोड़ें।'

तभी आनन्दित होकर गांधीजी बोले, 'तू छोड़े या न छोड़े यह बात अलग है परन्तु मैंने तो दोनों वस्तुएँ आजसे छोड़ दीं !'

गांधीजीके स्वभावको जाननेवाली पत्नी चिल्लायी, 'मुझे क्षमा करें, आप अपना वचन वापस लें, मैं ये दोनों वस्तुएँ छोड़ती हूँ।'

प्रसंग तो छोटा है, परन्तु सभीको जीवनमें याद रखने योग्य है। उपदेश देनेसे पहले आचरण पर ध्यान देना चाहिए। चारित्र्यका प्रभाव पड़ता है, बातोंका नहीं। गांधी बापू और कस्तूरबा बादमें भारतके करोड़ों मनुष्योंके हृदयमें छा गये, इसके पीछे संस्कार और आचरणका साधा हुआ सुभग मिलाप, और उसके द्वारा उनके जीवनमेंसे निकलती सुवास ही कारणभूत रहे।





પરમ શ્રદ્ધેય શ્રી આત્માજીજી

“ હું જ્ઞાતા છું,
જ્ઞાતાનો સેવક છું,
કૌનો મિત્ર છું.”

આત્માજી



શ્રી સત્શ્રુત સેવા સાધના કેન્દ્ર સંચાલિત
શ્રીમદ્ રાજચન્દ્ર આધ્યાત્મિક સાધના કેન્દ્ર
કોબા-382007 (જિ. ગાંધીનગર) ગુજરાત
ફોન : 23276219, 23276483-4 ફેક્સ : 23276142